पंजीयन संख्या : 68939/98

ज्ञान तत्व

सत्यता एवं निष्पक्षता का निर्भीक पाक्षिक

APR 2025
अंक - 7

469

परिवार और उसकी संरचना 3

यह तो सभी मानते हैं कि परिवार प्रणाली छिन्न-भिन्न हो रही है तथा परिवार प्रणाली का सफलतापूर्वक अस्तित्व आवश्यक है। किंतु कैसे? यह सोचना अधिक आवश्यक है। जिन परिवारों के कठोर अनुशासन हैं, वहाँ घुटन बढ़ते-बढ़ते टूटन में बदल जाती है

नई समाज व्यवस्था 7

हिन्दू जीवन पद्धति 8

सिंहावलोकन

7 नई समाज व्यवस्था

समाज में कुछ कुरीतियां आ गई हैं और उन कुरीतियों के कारण सामाजिक पतन हो रहा है, समाज कमजोर हो रहा है। दूसरा कारण है कि उन कुरीतियों का लाभ उठाने के लिए राजनीतिक नेता निरंतर सक्रिय हो रहे हैं।

9 महिला पुरुष सम्बन्ध

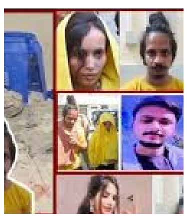

10 आंदोलनों का महत्व

10 हथियारों के खतरे

11 ज़ूम चर्चा कार्यक्रम का सारांश

12 साथियों की कलम से

13 जीवन पथ (उपन्यास)

पत्र व्यवहार का पता

बजरंग लाल अग्रवाल पोस्ट बाक्स 15, रायपुर (छ.ग.) 492021

website : margdarshak.info

प्रकाशक, संपादक व स्वामी - बजरंगलाल

9617079344

mail : Support@margdarshak.info

ज्ञान केन्द्र विचार, समन्वय और परिवर्तन के तीर्थ

परिवार और उसकी संरचना

बजरंग मुनि
प्रधान संपादक

सृष्टि के प्रारम्भ से ही परिवार की संरचना शुरू हो गई। दुनिया के किसी भी देश में किसी भी समय परिवार शब्द समाप्त नहीं हुआ, भले ही समय-समय पर उसके अर्थ बदलते रहे हों। पुराने समय में परिवार का अर्थ था एक ही चूल्हे तथा एक मुखिया की व्यवस्था के अंतर्गत रहने वाले रक्त संबंधियों का समूह। इस परिभाषा में बाद में संशोधन हुआ और परिवार का अर्थ पिता, माता और बच्चों तक सिमट गया। यदि उसमें चाचा-चाची आदि भी शामिल हों तो उसे संयुक्त परिवार कहा जाने लगा। अनेक देशों में संयुक्त परिवार के स्थान पर कबीला शब्द भी प्रचलित हुआ। प्राचीन काल के परिवार में संपत्ति पर परिवार का अधिकार होता था तथा परिवार के प्रत्येक सदस्य के सुख-दुख का दायित्व परिवार का होता है। बाद में यह व्यवस्था बदल गई और संपत्ति व्यक्तिगत तथा सुख-दुख भी व्यक्तिगत होने लगा। चीन में परिवार की इस परिभाषा को समाप्त करके एक नई परिभाषा तैयार हुई, जिसे कम्यून कहा गया। इसमें रक्त संबंध से कोई मतलब नहीं रखा गया, बल्कि आपसी सहमति के आधार पर एक साथ रहने वालों को कम्यून नाम दिया गया है।

यदि हम दुनिया भर का विचार करें तो पश्चिम की परिवार व्यवस्था टूट गई है, जबकि चीन, रूस आदि में समाप्त। भारत में वर्तमान व्यवस्था अब भी रक्त संबंधों के साथ जुड़ी है, यद्यपि परिवार की भावना, संरचना तथा व्यवस्था लगातार टूटती जा रही है। यदि पचास वर्ष पूर्व के भारत में परिवारों की सदस्य संख्या का औसत सात था, तो दस वर्ष पूर्व यह औसत घटकर पांच और अब तो पांच सदस्य प्रति परिवार से भी कम हो गया है। स्वतंत्रता के समय तैंतीस करोड़ की आबादी में यदि पांच करोड़ परिवार थे, तो आज सौ करोड़ की आबादी में पच्चीस करोड़ तक परिवार बन गए हैं। परिवार में टूटन लगातार तीव्र गति से जारी है।

1. भारतीय संविधान का द्विस्तरीय होना- भारतीय संविधान ने व्यवस्था की दो ही इकाइयाँ मानी हैं- 1 व्यक्ति 2 समाज। बीच में परिवार को संवैधानिक मान्यता प्रदान नहीं की गई, यहां तक कि सम्पूर्ण संविधान में कहीं भी एक बार भी परिवार शब्द शामिल नहीं है। इस तरह परिवार शब्द, उसकी संरचना तथा उसकी व्यवस्था संवैधानिक आधार पर न होकर शासकीय आधार पर हुई।

2. **राज्य द्वारा व्यक्ति का अधिक महत्व**- परिवार में रहते हुए भी व्यक्ति को व्यक्तिगत संपत्ति रखने की छूट देना भारतीय कानून की एक बहुत बड़ी कमजोरी रही। प्राचीन काल में तो परिवार छोड़ते समय भी संपत्ति पर व्यक्ति का कोई हिस्सा नहीं होता था, जिसे उलट कर ऐसा बना दिया गया कि परिवार में रहकर भी पृथक संपत्ति रख सकते हैं। पता नहीं कि कानून बनाने वालों ने ऐसी गलत व्यवस्था क्यों की, किंतु ऐसी व्यवस्था हुई अवश्य। इसके परिणाम स्वरूप संपत्ति संबंधी विवाद बढ़ने लगे तथा परिवार में रहते हुए परिवार से पृथक सोचने की प्रवृत्ति को भी प्रोत्साहन मिला। इसी तरह आयकर संबंधी कानूनों ने भी परिवार प्रणाली को बहुत क्षति पहुँचाई है। अनेक परिवारों को एक साथ रहते हुए भी पृथक-पृथक परिवार का पंजीकरण कराने की आवश्यकता महसूस हुई।

3. समाजशास्त्रियों द्वारा व्यक्ति केंद्रित भावना का विस्तार- अधिकांश धार्मिक और सामाजिक विद्वान व्यक्ति को स्व-केंद्रित करने का अभियान चला दिए। परिवार भावना से विरक्ति का प्राचीन काल का उद्देश्य व्यक्ति को परिवार से उठाकर समाज केंद्रित करना था। किंतु आज के साधु-संतों का प्रचार व्यक्ति को परिवार से हटाकर स्व-केंद्रित कर रहा है।

4. प्रत्येक व्यक्ति का स्व-केंद्रित होना- प्रत्येक व्यक्ति स्वयं तो अधिक से अधिक स्वतंत्रता चाहता है, किंतु वह साथ ही साथ यह भी चाहता है कि दूसरे लोग अपना वैसा आचरण रखें जैसा वह ठीक समझता है। वह स्वयं तो अनुशासन का पालन नहीं करता, किंतु दूसरों से अनुशासन की अपेक्षा करता है। परिणाम यह हुआ कि समाज में छोटे-छोटे राष्ट्र, राष्ट्र में छोटे-छोटे प्रांत या जिले, जिले में छोटे-छोटे गांव तथा गांव में छोटे-छोटे परिवारों का क्रम जारी है। प्राचीन समय में नीचे वाली इकाई ऊपर वाली इकाई से संबद्ध रहना उचित समझती थी। अब ऊपर वाली इकाई नीचे वाली इकाई को संबद्ध रखकर अपने अधीन रखना चाहती है, जबकि नीचे वाली इकाई अधीन तो दूर की बात है, संबद्ध भी नहीं रहना चाहती।

5. वैधानिक तरीके से मुखिया का चयन न होना- प्राचीन समय में परिवार का एक मुखिया निश्चित होता था। या तो वह सबसे बड़ा लड़का होता था या मुखिया की मृत्यु पर चुन लिया जाता था। अब परिवार में जो बड़ा है, वह निरंतर मुखिया बने रहना अपना पारंपरिक अधिकार समझता है, चाहे उसमें योग्यता हो या नहीं, चाहे उसे परिवार के लोग चाहें या न चाहें। ऐसी स्थिति में परिवार के अन्य लोग घुट-घुट कर रहते हैं या परिवार छोड़कर अलग हो जाते हैं या वे धीरे-धीरे लड़-झगड़कर मुखिया को दूर हटाकर नए मुखिया का अस्तित्व खड़ा कर देते हैं। मुखिया परिवर्तन की यह कठिनाई आम तौर पर परिवारों में घुटन, टूटन या कलह का कारण बनती है।

6. **उम्र और लिंग के आधार पर बनने वाले संगठन**- आजकल समाज में महिला जागृति, युवा जागृति के नाम पर एक नए फैशन की हवा चल पड़ी है। महिला, बालक और पुरुष सब एक परिवार के ही अंग थे, किंतु अब इनकी पृथक-पृथक चिंता करने वाले कानून या आंदोलनों ने परिवारों के भीतर द्वेष का नया वातावरण तैयार कर दिया है। कुछ तथाकथित समाज चिंतकों ने तो परिवार में महिलाओं को सप्ताह में एक दिन का अवकाश जैसा अदूरदर्शी और हास्यास्पद कानून तक बनवाने का प्रयास किया। ऐसी बातों ने परिवार सामंजस्य तथा परिवार भावना को गंभीर क्षति पहुँचाई है। परिवार में स्त्रियों को समान अवसर न मिलना व्यवस्था के लिए कलंक है, तथा इस कलंक को धोने के नाम पर परिवार के स्त्री-पुरुषों के बीच दरार उत्पन्न करना घातक है।

समाजशास्त्री चाहे स्वीकार करें या न करें, किंतु यह सच है कि भारत में परिवारों का अस्तित्व, संरचना तथा परिवार भावना निरंतर टूटन की ओर बढ़ रही है। यह एक खतरे की घंटी है, क्योंकि परिवारों का टूटना बहुत घातक है। परिवार भावना व्यक्ति में ऊपर की इकाई से संबद्ध रहने की भावना की पहली इकाई है। परिवारों की संरचना में व्यवस्था का सारा बोझ सरकार या समाज पर इकट्ठा न होकर बंट जाता है, जिससे सर्वोच्च इकाई पर अनावश्यक बोझ नहीं पड़ता। परिवार संरचना ऊपर की इकाइयों के अधिकारों का विकेंद्रीकरण तथा व्यक्ति की उच्छृंखलता पर अनुशासन का एक मात्र उपाय है। आज समाज, सत्ता के केंद्रीकरण तथा व्यक्तिगत उच्छृंखलता की दौड़ के बीच पिस रहा है। परिवार रचना इन दोनों टकरावों के बीच का ठहराव होने से आवश्यक है।

यह तो सभी मानते हैं कि परिवार प्रणाली छिन्न-भिन्न हो रही है तथा परिवार प्रणाली का सफलतापूर्वक अस्तित्व आवश्यक है। किंतु कैसे? यह सोचना अधिक आवश्यक है। जिन परिवारों के कठोर अनुशासन हैं, वहाँ घुटन बढ़ते-बढ़ते टूटन में बदल जाती है। ऐसे परिवारों में मुखिया के सामने अन्य सदस्य निस्तेज हो जाते हैं। दूसरी ओर जिन परिवारों में अनुशासन का अभाव है, वहाँ आपसी टकराव और उच्छृंखलता के कारण असफलता हाथ लगती है तथा लड़-झगड़कर परिवार टूट जाते हैं। कोई तीसरा रास्ता उपलब्ध नहीं। अतः अनुशासनहीनता तथा कठोर अनुशासन के बीच का ही मार्ग चुनना होगा। मैंने इस संबंध में सुझाव दिया है कि प्रत्येक परिवार का संचालन एक मुखिया करे, जिसे संवैधानिक मान्यता प्राप्त हो। इस तरह अनुशासन बना रहेगा। दूसरी बात यह है कि मुखिया का चुनाव परिवार प्रमुख, परिवार के सदस्यों की सहमति से करे। चयनित मुखिया को गुप्त मतदान द्वारा परिवार के सदस्यों की सहमति अनिवार्य होगी। इस तरह परिवारों में घुटन नहीं रहेगी। अनेक विद्वान मेरे इस सुझाव को परिवारों में द्वेष के बीजारोपण के रूप में देखते हैं, किंतु परिवारों में

मुखिया का चुनाव न हो तो क्या हो? सब बैठकर तय कर लें तो वह तय सहमति से हो कि दबाव से। दबाव है कि नहीं, यह बात यदि गुप्त मतदान द्वारा पूरी हो तो आपत्ति क्या है। अब तक मुखिया चयन का पारंपरिक तरीका घुटन और टूटन की जड़ है। इस नई प्रक्रिया से परिवारों में जो द्वेष पनपेगा, वह हमारे लिए एक आवश्यक बुराई है। यदि हम भावना में बहकर परंपराओं की लीक पकड़े रहें, तो परिवार व्यवस्था ही समाप्त हो जाएगी। मुखिया-चयन और गुप्त मतदान प्रणाली एक बार तो परिवारों में टूटन का कारण दिखेगी, किंतु सच्चाई यह है कि यही व्यवस्था बाद में परिवारों को स्थायित्व प्रदान करेगी।

दूसरा प्रावधान मैंने यह किया है कि भारत के प्रत्येक नागरिक के लिए न्यूनतम दो का परिवार बनाना अनिवार्य कर दिया है। जो व्यक्ति किसी एक व्यक्ति से भी सामंजस्य हेतु प्रतिबद्ध होने को तैयार नहीं है, उसे भारत की नागरिकता नहीं मिल सकती, भले ही व्यक्ति के रूप में वह रह सकता है। उसे भारत के अन्य नागरिकों की व्यवस्था में भागीदारी की अनुमति नहीं होगी। अतः उसे मतदान का भी अधिकार नहीं दिया गया है। यदि वह व्यक्ति भरण-पोषण तक सीमित रहे, तो उसकी सम्पूर्ण संपत्ति शासन में निहित करके उसके भरण-पोषण का दायित्व शासन का होगा, अन्यथा वह मतदान का अधिकार छोड़कर सभी के प्रकार समान रूप से जी सकता है। यह प्रावधान इसलिये आवश्यक है कि जो व्यक्ति अन्य लोगों की व्यवस्था में भागीदारी चाहता है, उसे किसी एक व्यक्ति के साथ रहने की आवश्यकता पूरी करनी ही होगी।

परिवार के संबंध में मेरा तीसरा सुझाव है कि परिवार की परिभाषा में ही संयुक्त संपत्ति शब्द जोड़ दिया गया है। इस तरह न तो कोई व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत संपत्ति रख सकेगा, न ही वह परिवार की इच्छा के विरुद्ध व्यय कर सकेगा। परिवार की सम्पूर्ण संपत्ति पर भी सभी सदस्यों का समान अधिकार होगा। यदि कोई सदस्य परिवार छोड़ता है, तो वह सम्पूर्ण संपत्ति में परिवार की कुल सदस्य संख्या के आधार पर हिस्सा पाएगा। इस संशोधन से संपत्ति में से अधिकार की सभी जटिलताएँ समाप्त हो जाएँगी। इस संशोधन से महिलाओं का भी परिवार की संपत्ति में समान हक होगा तथा वृद्ध लोगों की मृत्यु के बाद बंटवारे का कोई विवाद नहीं होगा, क्योंकि मृतक की संपत्ति पर किसी का अधिकार न होकर वह परिवार की संपत्ति होगी। विवाह के बाद लड़की यदि ससुराल पक्ष की सदस्य बनती है, तो वह पिता परिवार से अपना हिस्सा लेकर पति परिवार में जाएगी और पति परिवार की संपत्ति में उसका भविष्य में समान हिस्सा होगा। मेरे विचार में पारिवारिक संपत्ति में विभाजन का यह न्यूनतम विवादस्पद तथा सर्वश्रेष्ठ मार्ग है।

मेरा चौथा सुझाव है कि परिवार की परिभाषा में संयुक्त संपत्ति के साथ-साथ संयुक्त उत्तरदायित्व शब्द भी शामिल है। इसका अर्थ यह है कि परिवार के प्रत्येक सदस्य के आचरण का वैसा ही संयुक्त दायित्व होता है जैसा मंत्री मंडल का है। किसी भी सदस्य के लाभ-हानि, अच्छे-बुरे का परिणाम सबको समान रूप से मिलेगा। यदि परिवार का कोई एक सदस्य अपराध करता है और न्यायालय समझता है कि परिवार के अन्य सदस्यों ने अपने दायित्व का ठीक से निर्वहन नहीं किया, तो वह परिवार के अन्य सदस्यों को भी सजा दे सकता है। इस प्रावधान से समाज में अपराधों में बहुत कमी होगी तथा शासन पर बोझ भी कम हो जाएगा। इस प्रावधान में यह भी सुझाव है कि ऐसे अपराधी के दंड में उसी परिवार की सहभागिता होगी, जिसका वह सजा पाते समय सदस्य होगा, न कि उसको जिसका वह अपराध करते समय सदस्य होगा। इस तरह यदि कोई अपराधी आपकी बिना सहमति के अपराध करता है, तो उसे आप अपने परिवार से हटाकर स्वयं को सुरक्षित कर सकते हैं।

मेरा पांचवां सुझाव यह है कि परिवार का निर्माण आपसी सहमति के आधार पर हो। इसमें रक्त संबंध अनिवार्य न हो। इससे दस साधु भी मिलकर एक परिवार बना सकते हैं। या कोई किसी अन्य जाति का व्यक्ति भी आपसी सहमति से परिवार में शामिल हो सकता है। यह सुझाव भारतीय परंपरा और साम्यवादी कम्यून पद्धति का मिला-जुला स्वरूप है। इस सुझाव से भी परिवार निर्माण की अनेक जटिलताएँ समाप्त हो सकेंगी।

मेरा छठा सुझाव है कि परिवार में एक प्रमुख होगा, जो उस परिवार का सबसे अधिक उम्र का व्यक्ति होगा। उक्त प्रमुख की भूमिका परिवार में वही होगी जो भारत में राष्ट्रपति की होती है। कार्यकारी अधिकार तो प्रधानमंत्री रूपी मुखिया के पास होंगे, किंतु अंतिम अधिकार प्रमुख के पास ही होंगे। इस सुझाव से मुखिया चयन से होने वाला बुजुर्गों के मन का हीनभाव समाप्त होगा तथा पीढ़ियों के बीच का टकराव टलेगा। युवा और वृद्ध के बीच की दूरी हटाने का यह सर्वश्रेष्ठ मार्ग है।

मेरा सातवां सुझाव है कि प्रत्येक परिवार का एक प्रमुख और उतने मुखिया होंगे, जितनी ग्राम सभाओं में परिवार के लोग रहते हैं। इस तरह कई गांवों में रहने वाले लोगों का एक परिवार बन सकेगा तथा मुखिया के माध्यम से उक्त परिवार का ग्राम सभा से संबंध रहेगा।

परिवार का अर्थ है सम्पूर्ण समर्पण

दुनिया की अनेक व्यवस्थाओं में से भारतीय समाज व्यवस्था ही एकमात्र ऐसी व्यवस्था है जो त्रिस्तरीय है। साथ ही, भारतीय समाज व्यवस्था को इस बात का भी गौरव प्राप्त है कि वह सबसे ज्यादा लंबे समय तक सफलता पूर्वक चल रही है तथा वह विपरीत परिस्थितियों में भी लंबे समय तक टिकी रह सकती है। अन्यथा, अन्य कोई समाज व्यवस्था नहीं है जो दूसरी समाज व्यवस्थाओं के इतने आक्रमणों के बाद भी जीवित बच सके।

भारतीय समाज व्यवस्था में दो मौलिक इकाइयों “व्यक्ति और समाज” के बीच एक तीसरी इकाई है जिसे परिवार कहते हैं। जिस तरह व्यक्ति और समाज को पृथक-पृथक मौलिक अधिकार प्राप्त हैं, उस तरह के मौलिक अधिकार परिवार को प्राप्त नहीं होते, किंतु परिवार भी कोई ऐसी इकाई नहीं होती जो कुछ व्यक्तियों की साझेदारी से बनता हो अथवा किसी तरह का जोड़-तोड़ करके बनाया जा सके। परिवार भी स्वयं में एक स्वतंत्र अस्तित्व वाली इकाई होती है जो एक विशेष महत्व रखती है।

परिवार व्यवस्था में परिवार के प्रत्येक सदस्य का संपूर्ण समर्पण भाव एक आवश्यक शर्त होती है। यदि परिवार के किसी सदस्य का परिवार में संपूर्ण समर्पण न होकर आंशिक समर्पण भाव हो अथवा दुहरी निष्ठा हो, तो परिवार व्यवस्था ठीक से नहीं चल पाती। मेरी मान्यता तो यह है कि परिवार व्यवस्था में परिवार के प्रत्येक सदस्य को मौलिक अधिकार तो प्राप्त हैं, किंतु संवैधानिक या सामाजिक अधिकार प्राप्त नहीं हैं। परिवार का सदस्य परिवार में विलीन होता है। उसकी न तो पृथक से संपत्ति हो सकती है, न ही पृथक प्रतिबद्धता। उसकी सर्वप्रथम प्रतिबद्धता परिवार के प्रति होती है तथा परिवार की सहमति या अनुमति से ही वह कहीं और अपनी प्रतिबद्धता जोड़ सकता है।

अंग्रेजी समाज व्यवस्था में परिवार का कोई स्वतंत्र अस्तित्व न होकर वह व्यवस्था की एक इकाई होती है। उस व्यवस्था में परिवार कुछ व्यक्तियों का एक संगठन मात्र है। अंग्रेजों ने परिवार के प्रत्येक सदस्य को मौलिक अधिकारों के साथ-साथ संवैधानिक तथा सामाजिक अधिकार भी प्रदान किए। परिवार में रहते हुए भी व्यक्ति को व्यक्तिगत संपत्ति अलग रखने का अधिकार दे दिया गया। व्यक्ति को परिवार में रहते हुए भी परिवार की सहमति के बिना पृथक संगठनों में जुड़ने का कानूनी अधिकार भी दे दिया गया। प्रत्येक व्यक्ति को दुहरी प्रतिबद्धता की छूट दी गई। स्वाभाविक था कि दुहरी प्रतिबद्धता ने परिवार के अंदर आपसी संदेह का वातावरण बनाया। स्वतंत्रता के बाद तो पाश्चात्य संस्कृति के संवाहक पंडित नेहरू और डॉ. भीमराव अंबेडकर ने कुछ ऐसी संवैधानिक व्यवस्था बनाई कि परिवार व्यवस्था को पूरे संविधान से ही बाहर कर दिया। जो काम अंग्रेज बहुत डर-डर कर गुप्त रूप से कर रहे थे, वह काम इन दोनों ने मिलकर समाज सुधार के रूप में शुरू कर दिया। इन दोनों ने मिलकर ऐसी व्यवस्था चलाई कि संयुक्त परिवार व्यवस्था, सम्मिलित परिवार व्यवस्था में बदल गई। परिवार में शामिल प्रत्येक सदस्य का

अलग से संवैधानिक अस्तित्व भी हो गया तथा अधिकार भी। स्वतंत्रता के तुरंत बाद ही ये दोनों परिवार तोड़ने के समाज सुधार के लिए इतने उतावले थे कि इनके लिए ये सुधार सर्वोच्च प्राथमिकता के रूप में आ गए। अंबेडकर जी को भारतीय समाज व्यवस्था में कभी वैसा सम्मानजनक विश्वास प्राप्त नहीं हुआ और सब कुछ करते हुए भी अंबेडकर जी उस समय का लोकसभा चुनाव हार गए, किंतु नेहरू जी को सामाजिक विश्वास प्राप्त था। नेहरू जी जब पूरी ताकत से मैदान में आ गए, तब सारी स्थिति बदलती चली गई, जो अब तक उसी प्रकार चल रही है।

स्त्री और पुरुष का मिलकर एक साथ रहना एक प्राकृतिक मजबूरी है। ये दोनों पूर्ण समर्पण भाव से एकाकार हो, यह संयुक्त परिवार व्यवस्था है। इन दोनों को विशेष परिस्थिति में ही अलग-अलग होने की छूट थी तथा इस विटो का उपयोग भी असामाजिक कार्य ही माना जाता था। स्त्री-पुरुष का एक साथ जुड़ना दो परिवारों का जुड़ना माना जाता था, न कि दो व्यक्तियों का। नेहरू जी तथा अंबेडकर जी ने इन दोनों को दो बालिग व्यक्तियों का स्वतंत्र अधिकार बना दिया। विशेष स्थितियों में मजबूरी के वीटो अधिकार को खिलवाड़ के रूप में मान लिया। पाश्चात्य संस्कृति स्त्री और पुरुष के जुड़ने को आपसी समझौता मानती है और इस्लाम पुरुष द्वारा महिला का उपयोग। भारतीय संस्कृति इन सबसे अलग दो इकाइयों का विलिनीकरण देखती है, जो एक दूसरे को अपना स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त करके एक परिवार रूपी स्वतंत्र इकाई का स्वरूप देना है। मैं मानता हूं कि जो कुछ पुराना है, वह सब आंख मूंदकर मानने योग्य नहीं है। लेकिन साथ ही, मैं यह भी मानता हूं कि जो कुछ पुराना है, वह आंख मूंदकर बदलने योग्य भी नहीं है। कई मामलों में पुराना आज की अपेक्षा बहुत अविकसित रहा है, तो कई मामलों में आज की अपेक्षा कई गुना ज्यादा विकसित। नेहरू जी तथा अंबेडकर जी सारे पुराने को संशोधन योग्य और सारे नए को स्वीकार करने की भूल कर बैठे। यही भूल परिवार व्यवस्था को तोड़ने का आधार बनी। इन दोनों ने सबसे पहले परिवार व्यवस्था को तोड़ने की पहल स्वयं से ही शुरू की। स्वतंत्रता के बाद इन्होंने अपने-अपने परिवारों में पारंपरिक विवाह प्रणाली को तोड़कर व्यक्तिगत विवाह प्रणाली को बढ़ावा दिया। वे दोनों चाहे अपने-अपने परिवारों में नई प्रणाली को लागू करके आज जितने प्रसन्न होते, किंतु मैं तो अब भी पारंपरिक विवाह प्रणाली को प्रेम विवाह प्रणाली पर वरीयता देने का पक्षधर हूं। मेरे विचार से प्रेम विवाह दो सहमत स्त्री-पुरुषों का विशेषाधिकार है। किंतु वह आदर्श स्थिति नहीं। ये दोनों यदि प्रेम विवाह को मान्यता देने तक सीमित होते, तो वह अच्छी स्थिति हो सकती थी, किंतु प्रेम विवाह को प्रोत्साहित करना इन दोनों की नीयत पर संदेह पैदा करता है। आज की राजनीतिक व्यवस्था प्रेम विवाहों को प्रोत्साहित करने का जो प्रयास कर रही है, उनसे निस्संदेह परिवार व्यवस्था को गंभीर क्षति पहुंची है। देश में अनुशासन आवश्यक है। मंत्री परिषद की संयुक्त जिम्मेदारी होगी। किसी राजनीतिक दल से जुड़े सांसद यदि संसद में स्वतंत्र वोट देगा, तो संसद सदस्यता रद्द। किसी राजनीतिक दल का सदस्य सार्वजनिक रूप से दल के विरुद्ध कुछ बोल दे, तो अनुशासन की कार्यवाही संभव। किंतु किसी परिवार का सदस्य परिवार की इच्छा के विरुद्ध विवाह कर ले, तो कोई अनुशासनहीनता नहीं। यदि उसे रोकने का प्रयास हो, तो परिवार तोड़ने वाले बिग्रेड उसके समर्थन में बिना बुलाए तैयार। परिवार तोड़ने वाले बिग्रेड के बनाए कानून उसे संरक्षण देंगे और जरूरत पड़े, तो अनुशासनहीनता के लिए पुरस्कृत भी करेंगे।

नेहरू जी और अंबेडकर जी धर्म को अफीम मानते थे। यह उनका अधिकार है कि वे किसी धर्म से जुड़े या न जुड़े। किंतु उन दोनों को यह भी पता होना चाहिए कि परिवार व्यवस्था समाज व्यवस्था का हिस्सा है, धर्म व्यवस्था का नहीं। धर्म और समाज बिल्कुल भिन्न इकाइयां हैं। कोई भी व्यक्ति धर्म तो बदल सकता है, किंतु समाज नहीं। इन दोनों ने समाज व्यवस्था को भी तोड़ा और परिवार व्यवस्था को भी। यदि परिवार व्यवस्था, व्यक्ति को अनुशासन, सहजीवन, संपूर्ण समर्पण की ट्रेनिंग दे देती, तो राज्य व्यवस्था को बहुत सुविधा होती। लेकिन इन दोनों ने ऐसे प्रयास किए कि परिवार व्यवस्था धीरे-धीरे समाप्त हो जाए। यदि इनकम टैक्स कानूनों को ठीक से समझा जाए, तो वह पूरा का पूरा परिवार व्यवस्था को तोड़ने वाला कारखाना दिखता है। पति-पत्नी आपसी व्यवहार संबंधी बने हुए तथा लगातार बन रहे कानून इसी दिशा में लगातार सक्रिय हैं। यहां तक कि अब तो माता-पिता और पुत्र के बीच के संबंध में भी कानून घुसने का प्रयास कर रहा है। यदि कानून को वकीलों के व्यावसायिक हितों से दूर हटकर, सीधा सरल सपाट बनाया जाता तथा परिवार व्यवस्था को संवैधानिक मान्यता देकर व्यक्ति को परिवार का तथा परिवार को समाज का हिस्सा मान लिया जाता, तो संभवतः अनेक समस्याएं स्वतः कम हो गई होतीं। मैं पहले भी मानता था और अब तो बहुत ज्यादा पक्षधर हूं कि परिवार व्यवस्था को संवैधानिक मान्यता देकर तथा अनावश्यक कानूनों से मुक्त करके अनेक समस्याओं को रोका जा सकता है। इस दिशा में विचार मंथन होना चाहिए।

परिवार व्यवस्था

परिवार की मान्य परंपराओं तथा मेरे व्यक्तिगत चिंतन के आधार पर कुछ निष्कर्ष हैं जो वर्तमान स्थिति में अंतिम सत्य के समान दिखते हैं-

(1) व्यक्ति एक प्राकृतिक इकाई है और व्यक्ति समूह संगठनात्मक। परिवार एक से अधिक व्यक्तियों को मिलाकर बनता है। इसलिए परिवार को संगठनात्मक अथवा संस्थागत इकाई माना जा सकता है, प्राकृतिक नहीं।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को एक प्राकृतिक अधिकार प्राप्त होता है, और वह है उसकी स्वतंत्रता।

(3) प्रत्येक व्यक्ति का एक सामाजिक दायित्व होता है और वह होता है उसका सहजीवन।

(4) प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता असीम होती है, उस सीमा तक जब तक किसी अन्य व्यक्ति की सीमा प्रारंभ न हो जाए।

(5) प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता की सुरक्षा राज्य का दायित्व होता है तथा व्यक्ति को सहजीवन की ट्रेनिंग देना समाज का दायित्व होता है।

(6) परिवार व्यवस्था समाज व्यवस्था की एक पहली इकाई होती है, जो अपनी सीमा में स्वतंत्र होते हुए भी ऊपर की इकाइयों की पूरक होती है।

उपरोक्त धारणाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि परिवार व्यवस्था सहजीवन की पहली पाठशाला है और प्रत्येक व्यक्ति को परिवार व्यवस्था के साथ अवश्य ही जुड़ना चाहिए। किंतु पिछले कुछ सौ वर्षों से हम देख रहे हैं कि परिवार व्यवस्था टूट रही है। किसी भी व्यवस्था में यदि रूढ़िवाद आता है तो उसके दुष्परिणाम भी स्वाभाविक हैं। भारत की परिवार व्यवस्था कई हजार वर्षों से अनेक समस्याओं के बाद भी सफलतापूर्वक चल रही है। यहॉ तक कि लंबी गुलामी के बाद भी चलती रही। इसके लिए वह बधाई की पात्र है। किंतु स्वतंत्रता के बाद परिवार व्यवस्था में विकृतियों का लाभ उठाने के लिए अनेक समूह सक्रिय रहे। इन समूहों में धर्मगुरु, राजनेता, पश्चिमी संस्कृति तथा वामपंथी विचारधारा विशेष रूप से सक्रिय रहे। पारंपरिक परिवारों के बुजुर्ग भी किसी तरह के सुधार के विरुद्ध रहे। परिणाम हुआ कि परिवारों में आंतरिक घुटन बढ़ती रही और परिवार व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने वालों को इसका लाभ मिला।

वर्तमान समय में परिवार व्यवस्था के पक्ष और विपक्ष में दो विपरीत धारणाएँ सक्रिय हैं-

(1) **रूढ़िवादी धारणा** जो परिवार व्यवस्था को एक प्राकृतिक इकाई मानती है तथा उसमें किसी तरह के संशोधन के विरुद्ध है।

(2) **आधुनिक धारणा** जो किसी न किसी तरह इस व्यवस्था को नुकसान पहुँचाने के लिए प्रयत्नशील है, किंतु उसके पास परिवार व्यवस्था का कोई नया विकल्प या सुझाव नहीं है। रूढ़िवाद का यह परिणाम स्वाभाविक होता है, यदि उसमें देशकाल परिस्थिति के अनुसार संशोधन न किया जाए। संशोधन का अभाव ही अव्यवस्था का कारण बनता है और यही परिवार व्यवस्था के साथ भी हो रहा है।

मैं जिन मुद्दों पर गंभीरतापूर्वक सोचता हूँ किंतु साथ ही यह भी महसूस करता हूँ कि मेरी सोच वर्तमान प्रचलित धारणाओं के विपरीत है, उन्हें

समाज के बीच प्रस्तुत करने के पूर्व मैं लंबा प्रयोग भी अवश्य करता हूँ। मैं बचपन से ही महसूस करता था कि परिवार व्यवस्था बहुत अच्छी व्यवस्था है किंतु उसमें विकृति आ गई है और उसे टूटने से बचाने के लिए कुछ सुधार करने होंगे। मैंने ऐसे सुधार के लिए करीब 50 वर्ष पूर्व ही अपने परिवार को चुना। उस समय मेरे परिवार में कुल 10 सदस्य थे और हम सबने बैठकर चार महत्वपूर्ण निर्णय लिए-

(1) परिवार की सम्पूर्ण सम्पत्ति पर दसों सदस्यों का सामूहिक अधिकार होगा, जो उसके अलग होते समय ही उसे समान रूप से प्राप्त हो सकेगा।

(2) परिवार का प्रत्येक सदस्य सामूहिक अनुशासन में रहने के लिए बाध्य होगा।

(3) परिवार का कोई भी सदस्य कभी भी परिवार छोड़ सकता है अथवा कभी भी बिना कारण बताए परिवार से हटाया जा सकता है।

(4) परिवार में किसी भी प्रकार का विवाद होने पर हमारे कुटुंब प्रमुख के समक्ष अपील हो सकती है, जिनका निर्णय सबके लिए बाध्यकारी होगा।

हमारे परिवार में 50 वर्षों से लगातार संख्या घटती-बढ़ती रही। अब हमारा एक परिवार विभाजित होकर तीन परिवार बन गए हैं तथा हमारे कुटुंब में कुल 6 परिवार हैं। हमारे पूरे परिवार में उपरोक्त व्यवस्था सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। यहॉ तक कि कुटुंब अर्थात 6 परिवारों के पूरे 50 सदस्य हर चार महीने में कहीं एक साथ बैठकर विचार मंथन किया करते हैं। यह प्रक्रिया भी 50 वर्षों से निरंतर चल रही है। परिवार की आंतरिक बैठक तो समय-समय पर होती ही रहती है। हमारे कुटुंब का प्रमुख भी सभी सदस्य मिलकर ही चुनते हैं। वर्तमान में हमारे कुटुंब के प्रमुख हमारे सबसे छोटे भाई हैं जबकि तीन बड़े भाई अभी भी सक्रिय हैं। कुछ महीने पूर्व हमारे परिवार ने यह महसूस किया कि अब इस प्रणाली को सार्वजनिक तथा कानूनी स्वरूप दिया जाए। हम लोगों ने परिवार का एक सार्वजनिक और कानूनी स्वरूप इस प्रकार बनाया –

समझौता ज्ञापन (एम.ओ.यू.)

यह समझौता ज्ञापन आज दिनांक 23.10.2016 को नीचे लिखे तेरह सदस्यों की आपसी सहमति से तैयार तथा कार्यान्वित हो रहा है। सबने आपसी सहमति से स्वयं को भौतिक तथा कानूनी रूप से ज्ञापन में लिखे नियमों से एक सूत्र में बांधा है।

नियम-

(1) समूह का नाम कांवटिया परिवार क्रमांक एक होगा।

(2) परिवार के प्रत्येक सदस्य का परिवार के सभी सदस्यों की चल, अचल, नगद, ज्वेलरी, बांड, लेनदारी, देनदारी या अन्य किसी भी प्रकार की वर्तमान तथा भविष्य में अर्जित सम्पत्ति पर बराबर का अधिकार होगा। अर्थात् वर्तमान में प्रत्येक सदस्य का हिस्सा तब तक तेरहवां हिस्सा होगा जब तक सदस्य संख्या कम या अधिक न हो

(3) परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने व्यापार, आय, व्यय, संग्रह, कर्ज, अलग रखने के लिए उस सीमा तक स्वतंत्र होगा जब तक परिवार को आपत्ति न हो।

(4) परिवार का कोई भी सदस्य पूरी तरह परिवार के अनुशासन से बंधा होगा। उसकी राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक अथवा अन्य किसी भी प्रकार की गतिविधि उस सीमा तक ही स्वतंत्र होगी जब तक परिवार को आपत्ति न हो।

(5) परिवार का कोई भी सदस्य कभी भी परिवार छोड़ सकता है अथवा परिवार द्वारा परिवार से हटाया जा सकता है किंतु हटने वाला सदस्य परिवार से हटते समय की सम्पूर्ण सम्पत्ति में से सदस्य संख्या के आधार पर अपना हिस्सा ले सकता है।

(6) परिवार में रहते हुए परिवार की सम्पूर्ण सम्पत्ति पर प्रत्येक सदस्य का सामूहिक अधिकार होगा, व्यक्तिगत नहीं। कोई सदस्य किसी अन्य को भविष्य के लिए कोई वसीयत, दानपत्र अथवा अधिकार पत्र या घोषणा नहीं कर सकेगा क्योंकि परिवार में रहते हुए उसकी किसी सम्पत्ति पर उसका परिवार की सहमति तक ही व्यक्तिगत अधिकार है।

(7) परिवार के किसी सदस्य का नवजात बालक तत्काल ही परिवार का सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त सदस्य प्राकृतिक रूप से ही मान लिया जाएगा। तत्काल ही सम्पूर्ण सम्पत्ति में उसका बराबर हिस्सा हो जाएगा। परिवार में रहते हुए किसी सदस्य की मृत्यु होती है तो प्राकृतिक रूप से उसकी सदस्यता समाप्त हो जाएगी।

(8) परिवार के बाहर के कोई भी व्यक्ति (स्त्री, पुरुष, या बालक, बालिका) परिवार की सहमति से परिवार के सदस्य बन सकते हैं। सदस्य बनते ही उन पर ज्ञापन की सभी कंडिकाओं के अधिकार और कर्तव्य लागू हो जाएंगे।

(9) परिवार का कोई बालक बारह वर्ष की उम्र तक न बालिग माना जाएगा। उम्र पूरी होते तक बालक के परिवार से निकलने अथवा निकालने की स्थिति में उस क्षेत्र की स्थानीय इकाई अर्थात् ग्राम सभा या नगरीय निकाय को सूचना दी जाएगी। उसके हिस्से की सम्पत्ति भी उक्त स्थानीय निकाय की सहमति से बनाई गई व्यवस्था के अंतर्गत ही स्थानांतरित हो सकेगी।

(10) परिवार के सदस्य आपसी सहमति से परिवार के संचालन के लिए आंतरिक उपनियम बना सकेंगे तथा आवश्यकतानुसार उनमें फेरबदल भी कर सकेंगे। ऐसे सभी नियम या फेरबदल सभी सदस्यों के हस्ताक्षर से ही लागू होंगे।

(11) यदि परिवार का कोई सदस्य परिवार की सहमति के बिना कोई कर्ज लेता है, नुकसान करता है, सरकारी कानून का उल्लंघन करता है तो उक्त सदस्य की व्यक्तिगत सम्पत्ति तक ही सीमित होगी। परिवार के किसी अन्य सदस्य की सम्पत्ति उससे प्रभावित नहीं होगी। किंतु परिवार में रहते तक उस सदस्य का सामूहिक सम्पत्ति में बराबर का हिस्सा बना रहेगा जो उसे परिवार छोड़ने की स्थिति में प्राप्त हो सकता है।

(12) परिवार का कोई सदस्य परिवार के निर्णय से असंतुष्ट हो तो वह उच्च समिति के समक्ष अपनी बात रख सकता है। उच्च समिति में तीन सदस्य होंगे- 1. राजेन्द्र कुमार, आत्मज-धुरामल जी, 2. कन्हैयालाल, आत्मज-धुरामल जी, 3. सुषील कुमार, आत्मज-राधेश्याम जी। उच्च समिति का निर्णय अंतिम होगा।

(13) यदि इस ज्ञापन की कोई कंडिका किसी कानून के विरुद्ध जाती है तो न्यायालय का निर्णय अंतिम होगा। किसी तरह के विवाद की स्थिति में भी विवाद के समय प्रचलित कानून के नियमों के अनुसार लिए गए न्यायालयीन निर्णय मान्य होंगे।

(14) ज्ञापन की किसी कंडिका में कुछ जोड़ना, घटाना या सुधार करना हो तो उसी प्रक्रिया से हो सकता है जिस प्रक्रिया से यह समझौता ज्ञापन बना है।

इस कानूनी स्वरूप को हम लोगों ने नोटरी के द्वारा रजिस्टर्ड भी कराया जिससे कि भविष्य में कोई समस्या पैदा हो तो कानूनी समाधान निकल सके। मैं समझता हूँ कि उपरोक्त पारिवारिक ढाँचा से अनेक समस्याओं का समाधान हो सकता है। परिवारों में महिला अधिकार या महिलाओं को सम्पत्ति और संचालन व्यवस्था में समानता के अधिकार की मांग अपने आप समाप्त हो जाएगी और मेरे विचार से ऐसा होना न्याय संगत भी है। परिवार में रहते हुए कोई कानूनी रूप से अपने को माता-पिता, पति-पत्नी जैसी अन्य कोई विशेष मान्यता नहीं रख सकेगा और न ही देश का कोई कानून परिवार के आंतरिक मामलों में कोई हस्तक्षेप कर सकेगा। विवाह, तलाक, बालक-बालिका आदि के झगड़े या कोड बिल अपने आप समाप्त हो जाएंगे। सारे संबंध पारिवारिक या सामाजिक तक ही सीमित होंगे। इस व्यवस्था में यह बात भी विशेष महत्व रखती है कि अब तक सारी दुनिया में प्रचारित व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार संशोधित हो जाएगा और परिवार की सम्पत्ति सभी सदस्यों की सामूहिक होगी, व्यक्तिगत नहीं। इस व्यवस्था से अनेक प्रकार के सम्पत्ति अथवा अन्य कानूनी मुकदमे समाप्त हो जाएंगे। मैं तो अपने अनुभव से तथा कल्पना के आधार पर यह घोषित करने की स्थिति में हूँ कि उपरोक्त पारिवारिक व्यवस्था दुनिया की सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था का आधार बन सकती है। मैं मानता हूँ कि अन्य परिवारों को परिस्थिति अनुसार उपरोक्त प्रारूप में कई जगह बदलाव भी करने पड़ सकते हैं और उन्हें करने चाहिए किंतु मेरा एक सुझाव अवश्य है कि सम्पत्ति की समानता के अधिकार में कोई संशोधन करना उचित नहीं है।

मैंने हिन्दू अविभाजित परिवार कानून को और अधिक संशोधित करके यह नया स्वरूप बनाया है।

यदि हम देश में तानाशाही की जगह लोकतंत्र को सफल होता हुआ देखना चाहते हैं तो हमें इसकी शुरुआत परिवार से करनी चाहिए। परिवार व्यवस्था में तानाशाही और राज्य व्यवस्था में लोकतंत्र एक अव्यावहारिक कल्पना है। हमारे देश के संविधान निर्माताओं ने कुछ ऐसी विचित्र कल्पना की कि उन्होंने परिवार व्यवस्था में तो लोकतंत्र को शून्य हो जाने दिया और राज्य व्यवस्था में लोकतंत्र की बात करते रहे। परिणाम हुआ कि परिवार व्यवस्था लोकतंत्र के अभाव में टूटती रही और राज्य व्यवस्था निरंतर तानाशाही की तरफ अर्थात पारिवारिक केंद्रीयकरण की तरफ बढ़ती गई। मेरा सुझाव है कि देश के लोगों को संशोधित परिवार व्यवस्था पर विचार करना चाहिए और अपने-अपने परिवारों में लागू करना चाहिए।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न-2 आपने परिवार में दो पद निर्मित कर दिए। इतने पदों की आवश्यकता क्या है? ये पद जटिलता को कम न करके बढ़ाएंगे ही?

उत्तर- परिवार के सम्पूर्ण अधिकार एक व्यक्ति के पास केन्द्रित करना सुविधाजनक तो हो सकता है पर उचित नहीं। अधिकारों का विकेन्द्रीकरण हो और सब लोग आपसी सहमति और सूझबूझ से परिवार चलाएं, यह प्रणाली निश्चित ही उस प्रणाली से अच्छी होगी जिसमें एक व्यक्ति निर्णय करे और सब लोग पालन करें। इन दोनों पद्धतियों में कुछ-कुछ गुण और दोष विद्यमान हैं। किंतु प्रजातांत्रिक प्रणाली अनेक दोषों के बाद भी एकात्मक प्रणाली से अच्छी होती है।

नयी समाज व्यवस्था पर मुनि जी के कुछ सुझाव

नई समाज व्यवस्था में इस सिद्धांत को हमेशा ध्यान में रखा जाएगा कि नियम और कानून जितने अधिक होते हैं, उस इकाई के आम नागरिकों की सोचने की शक्ति उतनी ही कम हो जाती है। आज भारत में आम लोगों की सोचने की शक्ति बहुत कम हो गई है। हमें किस परिस्थिति में क्या निर्णय लेना चाहिए, यह क्षमता लगभग नहीं के बराबर है। हम दूसरों के निर्देश की प्रतीक्षा करते रहते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत के परिवार से लेकर सरकार तक बहुत से नियम-कानून बने हुए हैं और इसके कारण हमारी निर्णय करने की शक्ति प्रभावित हुई है। नई समाज व्यवस्था में हम नियम और कानून की संख्या बहुत कम कर देंगे। वर्तमान नियम-कानून हम 90% तक घटा देंगे, सिर्फ 10% ही नियम-कानून रहेंगे। सबको यह स्वतंत्रता दी जाएगी कि वह अपने-अपने आंतरिक नियम-कानून बना सके और अपने आंतरिक नियम-कानून भी कम बनाए, बहुत अधिक नहीं। इस तरह नई समाज व्यवस्था में आम लोगों की निर्णय करने की शक्ति को मजबूत किया जाएगा।

मैंने अपना पूरा जीवन भारत की और दुनिया की समस्याओं की पहचान, उनके कारण और समाधान खोजने में लगाया और अंत में यह निष्कर्ष निकाला कि सभी समस्याओं के दो कारण हैं। पहला कारण है कि समाज में कुछ कुरीतियां आ गई हैं और उन कुरीतियों के कारण सामाजिक पतन हो रहा है, समाज कमजोर हो रहा है। दूसरा कारण है कि उन कुरीतियों का लाभ उठाने के लिए राजनीतिक नेता निरंतर सक्रिय हो रहे हैं। ये राजनीतिक नेता इस प्रकार की कुरीतियों को और बढ़ा रहे हैं क्योंकि उनकी नियत खराब है। इस तरह समाज लगातार मूर्खता की दिशा में बढ़ रहा है और राजनीति लगातार धूर्तता की दिशा में बढ़ रही है। मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि इस समस्या का दोनों तरफ से एक साथ समाधान करना होगा। इसका अर्थ यह है कि हमारी कुरीतियों और बुराइयों का लाभ उठाने वाली राजनीति की ताकत को कमजोर भी करना होगा और हमें अपनी सामाजिक बुराइयां भी दूर करनी होंगी। हमें उन सामाजिक बुराइयों की पहचान भी करनी होगी कि वे बुराइयां क्या हैं, उनका समाधान भी बताना पड़ेगा और साथ में समाधान करने की शुरुआत भी करनी पड़ेगी। इसी तरह हमें यह भी बताना पड़ेगा कि राजनीति के कमजोर करने के लिए हमें कहां से शुरुआत करनी पड़ेगी और यह शुरुआत कौन करेगा। आज दिन भर के 3 सत्रों में हम इसी विषय पर विचार करेंगे कि यह कार्य कैसे होगा और कौन करेगा। यह बात समझ में आ गई है कि सिर्फ दुनिया में एक ही कार्य है और वह कार्य समाज सशक्तिकरण और राज्य कमजोर करना ही है, और कोई कार्य अभी नहीं है। चर्चा आज जारी रहेगी।

नई सामाजिक संवैधानिक व्यवस्था का एक संस्थागत ढांचा आपके सामने प्रस्तुत कर दिया है। दुनिया में यह पहला प्रयास होगा जब हम हर प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक, संवैधानिक व्यवस्था में सुधार और बदलाव के प्रयास की शुरुआत कर रहे हैं। यह शुरुआत 29, 30, 31 मार्च को दिल्ली में संस्थागत ढांचा बनने के साथ शुरू हो जाएगी। इस कार्य में आप सब की भूमिका भी महत्वपूर्ण होगी। सबसे पहले गांव-गांव में ज्ञान केंद्र बनेंगे और ज्ञान केंद्र की प्रमुख भूमिका यह होगी कि हर ज्ञान केंद्र स्थानीय स्तर पर या कुछ ज्ञान केंद्र मिलकर कम से कम वर्ष में एक बार एक बैठक या सम्मेलन अवश्य आयोजित करें। आगे की योजना उसके बाद बनेगी। इन ज्ञान केन्द्रों से ही लोक स्वराज अभियान, ज्ञान यज्ञ, परिवार, विचार मंथन आदि सभी संस्थाएं कार्य करेंगी। लेकिन सबका आधार ज्ञान केंद्र होगा। इसलिए मैं आप सब से निवेदन करता हूं कि आप अधिक से अधिक ज्ञान केंद्र बनाएँ, ज्ञान के दो से जुड़िए। 29, 30, 31 मार्च के दिल्ली कार्यक्रम में लिए इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपनी बात समाप्त करता हूं।

हम नई संवैधानिक व्यवस्था में सरकार को इस बात के लिए बाध्य करेंगे कि वह विश्व व्यवस्था या संयुक्त राष्ट्र संघ के किसी निर्देश की सामान्यतया अवहेलना न करें। यदि ऐसा कोई निर्देश ज्यादा गलत दिखता है, तब उस स्थिति में राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और मुख्य न्यायाधीश व्यक्तिगत रूप से सर्व सम्मति से उस निर्देश को अस्वीकार कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। हम वसुधैव कुटुंबकम को मानने वाले हैं, हम राष्ट्र से ऊपर विश्व व्यवस्था को मानने वाले हैं। राष्ट्र अंतिम इकाई नहीं है, इसलिए राष्ट्र को यह स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती कि वह जब चाहे मनमाने तरीके से विश्व व्यवस्था की अवहेलना कर दे। इसलिए हम लोगों ने अपने संविधान में यह व्यवस्था दी है। मैं आपको पुनः बता दूं कि हम वसुधैव कुटुंबकम को मानने वाले हैं।

नई समाज व्यवस्था में व्यक्ति से लेकर समाज तक के बीच कुछ सामाजिक सीढ़ियां होंगी। व्यक्ति के बाद पहला संगठन परिवार होगा, प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी परिवार का सदस्य होगा। दूसरा संगठन ग्राम सभा होगी, प्रत्येक परिवार ग्राम सभा का सदस्य होगा। तीसरी सभा मंडल सभा होगी, चौथी सभा प्रमंडल सभा होगी, पांचवी सभा राष्ट्र सभा होगी और अंतिम सभा समाज सभा होगी। इस तरह व्यक्ति से समाज तक अलग-अलग सभाएं होंगी, प्रत्येक सभा ऊपर वाली सभा के साथ जुड़ी हुई होगी और अपने आंतरिक मामलों में उसे स्वतंत्रता दी जाएगी। प्रत्येक सभा अपने नीचे वाली सभा की गलतियों के कारण उसका बहिष्कार कर सकती हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि व्यक्ति यदि गलत करता है, तो उसका बहिष्कार किया जा सकता है। वर्तमान व्यवस्था में समाज को बहिष्कार करने का भी अधिकार नहीं है, यह पूरी तरह गलत है। भारत में भी सरकार बहिष्कार करने के अधिकार को अपराध घोषित कर देती है, लेकिन हम लोगों की व्यवस्था में किसी भी व्यक्ति या इकाई का अन्य सब लोग बहिष्कार कर सकते हैं। वास्तव में समाज के पास बहिष्कार ही एकमात्र ऐसा शस्त्र है, जिसके आधार पर व्यक्ति को अनुशासित किया जा सकता है। बहिष्कार के अधिकार को फिर से जीवित करने की आवश्यकता है। मैं सामाजिक बहिष्कार का पक्षधर हूं। नई समाज व्यवस्था में बहिष्कार का अधिकार समाज को दिया जाएगा।

यदि किसी नए बच्चे का जन्म होगा, तो उस बच्चे की पहचान माता-पिता के आधार पर नहीं होगी, बल्कि परिवार के सदस्य के रूप में होगी। नया जन्म लेने वाला बच्चा उस परिवार का सदस्य होगा, जिस परिवार की मां होगी, पिता की कोई पहचान होगी ही नहीं। पिता की पहचान के लिए कोई डीएनए टेस्ट नहीं होगा। बच्चा माता के साथ रहे या पिता के साथ रहे, यह प्रश्न समाप्त हो जाएगा। बच्चा परिवार का सदस्य होगा, परिवार के साथ रहेगा। हम इस माता और पिता शब्द के झगड़े को समाप्त कर देना चाहते हैं। इसकी कोई

जरूरत नहीं है। बच्चों पर सरकार का कोई अधिकार नहीं होगा। यदि कोई परिवार आपसी सहमति से अपना बच्चा किसी को देना चाहता है, तो वह बच्चों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। सरकार की स्वीकृति की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार के बदलाव में सिर्फ ग्राम सभा की भूमिका हो सकती है। बच्चों की पहचान परिवार के साथ जुड़ जाने से हम कई प्रकार के विवादों से बच सकते हैं।

नई समाज व्यवस्था में जिस भी व्यक्ति को कोई सम्मानित या जिम्मेदारी का पद दिया जाएगा, उसकी कोई न कोई परीक्षा अवश्य होगी। इस तरह सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जो भी लोग माने जाएंगे, उनकी एक परीक्षा होगी और उस परीक्षा के बाद ही उन्हें वर्ण दिया जाएगा। जो भी व्यक्ति सन्यासी घोषित होगा या वानप्रस्थी होगा, उसकी भी कोई न कोई परीक्षा होगी। राजनीतिक पदों में यदि कोई व्यक्ति सांसद बनता है, तो उसकी भी परीक्षा होगी। सांसद बनने के लिए मेरे विचार से यह आवश्यक होगा कि वह ब्राह्मण ही होना चाहिए। न्यायाधीश भी ब्राह्मण में से ही बनेंगे। कोई प्रधानमंत्री या कार्यपालिका में जाएगा, तो वह क्षत्रिय होना चाहिए। इसके साथ-साथ अर्थ पालिका का प्रमुख बनने वाले को वैश्य होना आवश्यक होगा। इसी तरह हम ऐसी व्यवस्था भी कर सकते हैं कि सांसद जो बनना चाहता है, उसे कम से कम 10 वर्षों का परिवार प्रमुख या ग्राम पंचायत के प्रमुख के संचालन का अनुभव होना चाहिए। इस तरह हम कुछ ऐसी व्यवस्था कर सकते हैं, जिससे योग्यता को ही आगे दायित्व की व्यवस्था स्थापित हो।

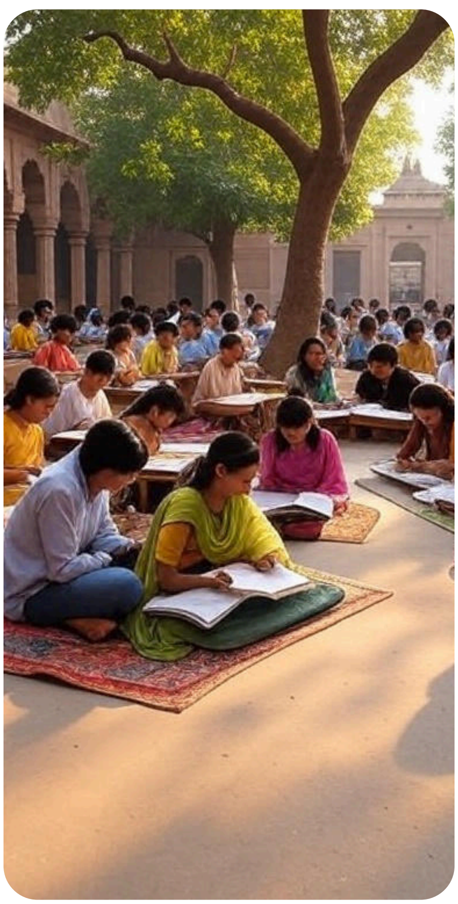

हिन्दू जीवन पद्धति

"हिंदू जीवन पद्धति में गलतियां करने वालों के हृदय परिवर्तन करने की जिम्मेदारी धर्म की है और अनुशासित करने की जिम्मेदारी समाज की है। सिर्फ अपराध करने वालों को दंडित करने के लिए ही राज्य नामक एक मैनेजर नियुक्त किया जाता है, जिसकी किसी अन्य कार्य में कोई भूमिका नहीं होती।"

वैसे तो दुनिया में कई प्रकार की जीवन पद्धतियां प्रचलित हो गई हैं, लेकिन यदि उन सब में तुलनात्मक अनुभव किया जाए, तो मेरे विचार से हिंदू जीवन पद्धति ही सबसे अधिक वैज्ञानिक दिखती है। इस जीवन पद्धति में वर्ण व्यवस्था है, आश्रम व्यवस्था है, व्यक्ति को पूरी स्वतंत्रता है और स्वतंत्रता के साथ-साथ सहजीवन की मजबूरी भी है। हिंदू एकमात्र जीवन पद्धति है जिसमें गुणात्मक बदलाव को प्रोत्साहित किया जाता है और संख्या वृद्धि का कोई महत्व नहीं है। हिंदू जीवन पद्धति में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी-अपनी पूजा पद्धति मानने की स्वतंत्रता है। कोई ईश्वर को माने या न माने, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। हिंदू जीवन पद्धति में व्यक्ति को व्यक्तिगत मामलों में अपने निर्णय करने की पूरी स्वतंत्रता है। वह क्या खाता है, क्या पीता है, किस तरह रहता है, इसका निर्णय वह स्वयं कर सकता है। हिंदू जीवन पद्धति में गलतियां करने वालों के हृदय परिवर्तन करने की जिम्मेदारी धर्म की है और अनुशासित करने की जिम्मेदारी समाज की है। सिर्फ अपराध करने वालों को दंडित करने के लिए ही राज्य नामक एक मैनेजर नियुक्त किया जाता है, जिसकी किसी अन्य कार्य में कोई भूमिका नहीं होती। आप अच्छी तरह सोचकर बताइए कि हिंदू के अतिरिक्त किसी अन्य जीवन पद्धति में इतनी स्वतंत्रता है? आप किसी ग्रंथ को पढ़ो, मत पढ़ो, उसके पक्ष में बोलो, विरोध में बोलो, हिंदू जीवन पद्धति में किसी की कोई रोक नहीं है। इसलिए मुझे गर्व है कि मैं हिंदू जीवन पद्धति के आधार पर जीवित हूं।

मैंने पूर्व में यह लिखा था कि हमें हिंदू राष्ट्र और आक्रामकता की कोशिश छोड़ देनी चाहिए, यह उचित नहीं है। अभी नाम बदलने और कब्र हटाने की बात गलत है। कई मित्रों ने मेरे कथन का विरोध किया। मैं स्पष्ट कर दूं कि यह नाम बदलने और राष्ट्र का नाम बदलने की बातें लड़ाई जीतने के बाद करते हैं, युद्ध के समय नहीं। वर्तमान समय में अभी भारत के मुसलमान टकराव के मूड में हैं। क्योंकि जब तक भारत में मुसलमान आबादी बढ़ाता रहेगा, तब तक हम चाहे नाम बदल दें, देश का नाम बदल दें, 10-20 मंदिर खड़े कर दें, कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। वे आबादी बढ़ा लेंगे, फिर से हमारे सारे नाम बदल देंगे। इसलिए खतरा वर्तमान में इस बात का है कि वे आबादी बढ़ा रहे हैं, विदेशी मुसलमान भारत में बड़ी संख्या में आ रहे हैं, भारत में भी धर्म परिवर्तन अभी भी हो रहा है, वे अधिक से अधिक महिलाओं को अपने साथ लेकर अपनी संख्या बढ़ा रहे हैं। इसलिए जब तक हम जनसंख्या वृद्धि के अनुपात को बराबर नहीं कर लेते, तब तक हम लड़ाई हमेशा हारते रहेंगे। इसलिए मेरा यह सुझाव है कि हम पहले जनसंख्या वृद्धि के अनुपात को बराबर करें, हम धर्म परिवर्तन के प्रयत्नों पर रोक लगाएं, हम विदेशी मुसलमान को भारत आने से रोक लें, भारत में आए हुए घुसपैठियों को हम बाहर निकाल सकें, हम वोट की लालच में मुसलमान का समर्थन करने वाले कांग्रेसी और कम्युनिस्टों को हरा सकें, तो नाम तो बाद में भी बदल जाएगा। इसलिए मैं नाम बदलने के अभियान के पक्ष में नहीं हूं। वास्तविक समस्याओं से ध्यान हटाना और हिंदुओं को आक्रामक बनाकर विजेता का भाव स्थापित करना गलत कदम माना जाएगा।

शिक्षा व्यवस्था

मैंने पहले भी कई बार लिखा है और फिर लिख रहा हूं कि शिक्षा को पूरी तरह स्वतंत्र होना चाहिए। सरकार को किसी भी रूप में शिक्षा में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। कोई व्यक्ति पढ़ना चाहता है या परिवार का कार्य करना चाहता है या किसी आधार पर आगे बढ़ना चाहता है, यह उसका काम है, परिवार का काम है, समाज का काम है, सरकार का नहीं। सरकार सबको स्वतंत्र प्रतियोगिता करने दे। सरकार के लिए यह उचित नहीं है कि वह श्रम को महत्वहीन मानकर शिक्षा को महत्व देना शुरू कर दे। मैंने कई बार लिखा कि सरकारों को शिक्षा का बजट समाप्त कर देना चाहिए क्योंकि शिक्षा देना सरकार का दायित्व नहीं है। अगर सरकारी स्कूल चलाना चाहती है, तो वह स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा कर सकती है। उसके लिए किसी भी रूप में जनता पर टैक्स लगाना ठीक नहीं है क्योंकि श्रम या बुद्धि, इन दोनों में से कौन महत्वपूर्ण है, यह निर्णय करना सरकार का काम नहीं है। अभी-अभी पहली बार अमेरिका के राष्ट्रपति ट्रंप ने यह घोषणा की है कि वह शिक्षा पर होने वाला खर्च पूरी तरह बंद कर देंगे। उनके अनुसार शिक्षा स्वतंत्र होनी चाहिए। मैं ट्रंप की इस पहल का स्वागत करता हूं। कामचोर और भ्रष्टाचार करने वाले लोग शिक्षा का बजट बढ़ाने की बहुत ज्यादा मांग करते रहते हैं। मेरे विचार से ट्रंप ने यह बहुत हिम्मत का काम किया है कि उन्होंने सरकार को शिक्षा से अलग करने की शुरुआत की है। मैं चाहता हूं कि भारत सरकार भी इस मामले में गंभीरता से विचार करे।

धर्म के नाम पर आक्रामकता –

आज जंतर मंतर पर वक्फ बिल के विरोध में विपक्षी दलों की एक आम सभा हुई। विपक्षी दलों के नेताओं ने अपने-अपने तरीके से वक्फ बिल का विरोध किया, लेकिन एक बड़े मुस्लिम धर्म गुरु मौलाना महमूद मदनी ने आम सभा में इस बात की घोषणा की कि अब हमें जंतर मंतर पर या अन्य कहीं धरना प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। इससे कोई लाभ नहीं होगा। अब तो भारत के मुसलमान को कुर्बानी देने के लिए तैयार रहना चाहिए। उनके इस कथन का वहां उपस्थित मुसलमानों के साथ हिंदुओं ने भी पूरा समर्थन व्यक्त किया। भारत के इतिहास में यह पहली बार आया है कि कोई मुस्लिम धर्म गुरु इस तरह खुले आम कुर्बानी की बात कर रहा है। अभी तक तो मुसलमान धर्मगुरु जिहाद की बात करते थे। जिहाद का अर्थ होता है संघर्ष करना, मरना, मारना और कुर्बानी का अर्थ होता है शांतिपूर्वक मरना। ऐसा लगता है कि भारत के मुसलमान को यह बात समझ में आ रही है कि हम भारत में लड़कर नहीं जीत सकते। इसलिए यदि हम आराम से और शांति से मरने को तैयार होंगे, तो हो सकता है कि भारत के हिंदुओं का दिल पिघल जाए और वह कुछ रियायत देने को तैयार हो जाएं। मेरे विचार से यदि मुसलमान ने इस तरह कुर्बानी देने की योजना बनाई, तो भारत का मुसलमान इस बात को स्वीकार नहीं करेगा क्योंकि वह तो स्वभाव से जिहादी है, कुर्बानी देने वाला नहीं। लेकिन यदि मुसलमान आराम से इस बात को स्वीकार करते हैं, किसी प्रकार का कोई कानून नहीं तोड़ते हैं, तो उनकी कुर्बानी देखकर भारत के हिंदुओं के सोच में कुछ बदलाव स्वाभाविक है। अब इस बात पर निर्भर करेगा कि मुसलमान महमूद मदनी की बात मानते हैं या नहीं। इतना अवश्य है, अगर वह किसी प्रकार का कानून तोड़ेंगे, तो इसका परिणाम उनके लिए बहुत बुरा होगा।

धर्म के नाम पर आक्रामकता को बढ़ावा देना हमेशा घातक होता है। हजरत मोहम्मद ने मुसलमान को आक्रामक होने का पाठ पढ़ाया, उसका आज यह परिणाम दिख रहा है कि दुनिया का मुसलमान अलग-थलग पड़ गया है। भारत में भी मुसलमान संदेह की दृष्टि से देखा जा रहा है। हर मुसलमान को आमतौर पर झगड़ालू, धोखा देने वाला, अविश्वसनीय और जूठा खिलौने वाला समझा जा रहा है। इसका प्रमुख कारण है कि हर मुसलमान के स्वभाव में आक्रामकता का महत्व स्थापित किया गया। लेकिन वर्तमान समय में कुछ हिंदू भी इस गलती को दोहरा रहे हैं। आक्रामकता का जवाब कानून से दिया जा सकता है, सरकार से दिया जा सकता है, विश्व व्यवस्था से दिया जा सकता है, आक्रामकता से नहीं। भारत में नरेंद्र मोदी की सरकार जिस तरीके से मुस्लिम आक्रामकता का जवाब दे रही है, वह पूरी तरह संतोषजनक है। ऐसी स्थिति में हम कब्र तोड़ने, शहरों के नाम बदलने या अन्य आक्रामक गतिविधियों को जरूरत से ज्यादा महत्व देते हैं, तो हिंदुओं में वही खतरा पैदा हो जाएगा जो गलती मुसलमान ने की है। यदि कब्र या स्थान के नाम बदलने के निर्णय केंद्र सरकार की तरफ से लिए जाएं, तब तो यह बात विचारणीय हो सकती है, लेकिन हमारे धर्मगुरु इस प्रकार हिंदू राष्ट्र की मांग करें, कब्र हटाने की मांग करें, यह हिंदुत्व को गलत दिशा देने का आधार हो सकता है। मेरे विचार से वर्तमान समय में मुसलमान ने जो गलती की है, उस गलती से हिंदुओं को सबक सीखने की जरूरत है, अनुकरण करने की नहीं। भारत में जो हिंदू हिंदू राष्ट्र की मांग कर रहे हैं, कब्र तोड़ने की मांग कर रहे हैं, वह मुसलमान की गलतियों का लाभ उठाना चाहते हैं, समाधान नहीं करना चाहते। मैं इस प्रकार के टकराव का समाधान करने का पक्षधर हूं। लाभ उठाना कोई अच्छी पहल नहीं है। अगर कोई राजनेता या अन्य व्यक्ति इस प्रकार लाभ उठाने की पहल करें, तो वह संभव भी हो सकता है, लेकिन कोई धर्म गुरु ऐसा करें, यह उचित नहीं है।

महिला-पुरुष संबंध

मेरठ शहर की एक घटना बहुत गंभीर प्रश्न खड़े करती है। इस घटना में तीन पुरुष शामिल हैं, तीन महिलाएं हैं, मानवता है, सेक्स है, ड्रग्स है, तंत्र मंत्र है, अपराध है, सब कुछ एक घटना में सम्मिलित है। एक परिवार की लड़की किसी एक पुरुष से लव मैरिज करती है। कुछ दिनों बाद उसका पति विदेश कमाने चला जाता है। महिला अपने पर नियंत्रण नहीं रख पाती है और किसी अन्य पुरुष के साथ अघोषित संबंध बनाती है। पति का अलग रहते हुए भी पत्नी के साथ व्यवहार बहुत अच्छा है। महिला के माता-पिता अपने दामाद से पूरी तरह संतुष्ट हैं। महिला का पति छुट्टियों में घर आता है, तब तक महिला और उसके प्रेमी दोनों ड्रग्स के शिकार हो जाते हैं। दोनों सेक्स को भी बहुत अधिक महत्व देने लगते हैं। दोनों मिलकर पति की हत्या कर देते हैं। हत्या करके उसके कई टुकड़े करके एक ड्रम में सीमेंट डालकर जाम कर देते हैं। किसी को कोई खबर नहीं। प्रेमी और महिला दोनों जाकर कहीं विवाह कर लेते हैं। उन दोनों के पास पैसे की कमी होती है, तो महिला अपनी मां के पास आकर अपने पति के बैंक अकाउंट से पैसा निकालने का प्रयास करती है। इस प्रयास में ही वह महिला अपने माता-पिता को पति की हत्या की बात बता देती है। माता-पिता बेचैन हो जाते हैं और माता-पिता दोनों पुलिस में जाकर अपनी लड़की को गिरफ्तार करवा देते हैं। उस महिला की उसके पति से एक 6 वर्ष की लड़की भी है और वह पूरी तरह बेसहारा हो जाती है क्योंकि पिता मर गया, मां और सौतेला पिता दोनों जेल चले गए। अब तो नाना-नानी ही उसके लिए महत्वपूर्ण हो जाते हैं। गंभीर प्रश्न यह है कि इसमें हमारी सामाजिक व्यवस्था कितनी दोषी है। मेरे विचार से यदि परिवार व्यवस्था बिल्कुल ठीक होती, तो इस प्रकार की घटनाएं कम हो सकती हैं। हमें आपस में बैठकर यह विचार करना होगा कि इस घटना के माध्यम से हम क्या सामाजिक व्यवस्था में बदलाव कर सकते हैं।

आंदोलनों का महत्व

पूरे देश में गुंडागर्दी करने वाले लोग आंदोलन का ही सहारा लेते हैं क्योंकि उन्हें हराम का खाने को मिलता है। साथ में माला भी पहनते हैं, उसके साथ-साथ दूसरों को गालियां देने की छूट भी मिल जाती है और सबसे बड़ा लाभ होता है, एक-दो बार जेल जाने के बाद नेता बनने की सुविधा प्राप्त हो जाती है। इसलिए गुंडे सबसे अधिक आंदोलन का सहारा लेते हैं। कभी वह किसान के नाम पर, कभी आदिवासी दलित के नाम पर, कभी बेरोजगारी के नाम पर, कभी हिंदू मुसलमान के नाम पर और कभी सरकारी कर्मचारियों के नाम पर इस प्रकार के आंदोलन करते रहते हैं। इन आंदोलनों के पीछे राजनीतिक दलों का बहुत बड़ा हाथ होता है। यह बात जग जाहिर है कि इस प्रकार के गुंडों ने पिछले साल भर से अपने को किसान कहकर सारी सुविधाएं प्राप्त की, हराम का खाना खाया, मनमानी धमकियां दी, गालियां दी, नेता बनने के रास्ते खोले, सारे षड्यंत्र किए और आम आदमी पार्टी ने इन नेताओं को पूरा-पूरा संरक्षण भी दिया। लेकिन अभी-अभी जब अरविंद केजरीवाल विपश्यना में गए और उन्हें इस बात की जानकारी हुई कि इन किसानों के आंदोलन के कारण पंजाब के व्यापारी बहुत परेशान हैं, खासकर लुधियाना क्षेत्र के लोगों का व्यापार बहुत प्रभावित हो रहा है और आम आदमी पार्टी चुनाव में नुकसान उठा सकती है, तब अरविंद केजरीवाल ने विपश्यना करते-करते ही यह निर्णय किया कि बस अब मैं तुरंत इन गुंडों से सड़क खाली कराऊंगा और विपश्यना से निकलते ही उन्होंने इन किसान नामधारी आंदोलनकारियों को मार भगाया। मैं पंजाब सरकार की और अरविंद केजरीवाल की इस सक्रियता की सराहना करता हूं और कांग्रेस या अन्य विपक्षी दलों की भूमिका की निंदा करता हूं, जिन्होंने इन अपराधियों के पक्ष में अनावश्यक आंसू बहाना शुरू किया है। यदि अरविंद को भी चुनाव में हारने का डर नहीं होता, तो अरविंद को भी अक्ल नहीं आती। मेरा सभी राजनीतिक दलों से निवेदन है कि आंदोलन के नाम पर गुंडागर्दी करने वाले आपको भविष्य में नुकसान ही देंगे, लाभदायक नहीं होंगे। तात्कालिक लाभ हो सकता है, लेकिन दीर्घकालिक परिणाम बुरा होगा, जैसा कि अभी पंजाब में अरविंद केजरीवाल को आभास हो गया था।

जिस तरह भारत में 100-200 कश्मीरी मुसलमान, 100-200 पेशेवर किसान, 100-200 हिंसक नक्सलवादी पूरे देश की शांति को खतरे में डालते रहे हैं, इस तरह लगभग 100 महिलाओं का गिरोह पूरे देश को परेशान करने में लगा हुआ है। यह महिलाएं सभी दलों में हैं। इनमें से कुछ पत्रकार हैं, कुछ कलाकार हैं, कुछ अन्य प्रकार का धंधा करती हैं, लेकिन सब ने मिलकर एक गिरोह बना लिया है और यह सब मिलकर दिन-रात महिला-महिला चिल्लाती रहती हैं। अभी इलाहाबाद हाई कोर्ट के किसी न्यायाधीश ने एक बिल्कुल उचित फैसला दिया। इस फैसले के अनुसार किसी महिला के कोई अंग छूना या उसके कपड़े खोलने की कोशिश करना बलात्कार नहीं माना जाएगा, बल्कि बलात्कार की इच्छा माना जाएगा। न्यायालय ने अपने फैसले में लिखा है कि इस प्रकार के अपराध के लिए पोक्सो के अंतर्गत मुकदमा चलेगा, लेकिन वह मुकदमा बलात्कार की इच्छा करने का ही होगा, बलात्कार का नहीं। स्पष्ट है कि इस प्रकार का मुकदमा सबूत होने पर अपराधी को आजन्म कारावास तक हो सकता है, फांसी नहीं। यह गिरोह इतना अधिक चिल्लाना शुरू कर दिया जैसे कि इस प्रकार के अपराध के लिए फांसी ही होनी चाहिए। अरे भाई, बलात्कार की तैयारी, बलात्कार की इच्छा और बलात्कार की क्रिया इन दोनों को एक कैसे मान लिया जाएगा? न्यायालय ने मुकदमा चलाने की अनुमति दी है, लेकिन एक धारा को हटाया है। यह मुट्ठी भर महिलाएं सिर्फ महिला नाम आ जाने से इस तरह चिल्लाती हैं जैसे कि सारे देश को यह बलात्कार के नाम पर ब्लैकमेल करने का ठेका उठा लिया है। यदि न्यायालय ने कुछ गलत किया है, तो अपील की जा सकती है। सुप्रीम कोर्ट उसकी सुनवाई करेगा। इस प्रकार से चिल्लाने की क्या जरूरत है? इसलिए जिस तरह भारत सरकार ने कश्मीर के पत्थरबाजों को शांत किया है, बस्तर के नक्सलवादियों को शांत कर रहे हैं, अभी तथाकथित किसानों को मार के भगाया गया है, इस तरह अब इस प्रकार के महिला गिरोहों से भी निपटना आवश्यक है।

हथियारों के खतरे

नित्यानंद राय हमारे देश के केंद्रीय मंत्री हैं और बिहार के रहने वाले हैं। उनकी बहन के दो लड़कों ने, जो पढ़े-लिखे हैं, एक मामूली सी बात पर झगड़ा कर लिया, और वह झगड़ा इतना बढ़ गया कि दोनों भाइयों ने एक-दूसरे पर गोलीबारी की। बीच में दोनों की मां बीच-बचाव करने आईं तो उन्हें भी गोली लग गई। एक भाई की मृत्यु हो गई है, जबकि दूसरा भाई और मां दोनों घायल अवस्था में अस्पताल में हैं। यह घटना एक संभ्रांत परिवार की मां-बेटों की है। गंभीर प्रश्न यह है कि इस प्रकार की समस्याएं बढ़ती क्यों जा रही हैं। मैंने बहुत लंबे समय से इन समस्याओं के बढ़ने पर चिंता व्यक्त की थी और इसका समाधान बताया था कि इसका समाधान संशोधित संयुक्त परिवार व्यवस्था है। मैं वर्तमान परिवार व्यवस्था के पक्ष में नहीं हूं, जैसा कि नित्यानंद राय जी के बहन के परिवार में है। आज यही परिवार व्यवस्था आमतौर पर देशभर में चल रही है, लेकिन इसके परिणाम अच्छे नहीं हैं। इसलिए वर्तमान परिवार व्यवस्था में संशोधन करने की आवश्यकता है, और वह संशोधन ही इस प्रकार के विवाद निपटा सकता है। दूसरी ओर, सरकार इस प्रकार के विवादों का लाभ उठाकर परिवार व्यवस्था को ही कमजोर करना चाहती है। सरकार के यह प्रयास भी उचित नहीं हैं। मैं चाहता हूं कि सरकार परिवारों को आंतरिक निर्णय करने के अधिकतम अधिकार दे। सरकार अपने को परिवार व्यवस्था से अलग कर ले, लेकिन परिवार व्यवस्था भी अपनी कमजोरी को दूर करके एक संशोधित परिवार व्यवस्था बनाए। मेरे विचार से इन दोनों का संयुक्त परिणाम ही इस प्रकार की समस्याओं का समाधान हो सकता है, जिस तरह की समस्याएं नित्यानंद जी के परिवार में देखने को मिलीं।

ज़ूम चर्चा कार्यक्रम का सारांश

17/03/2025 मंथन क्रमांक 354: मुसलमानों का तुष्टीकरण समाज के लिए भी घातक है और देश के लिए भी। पूरे भारत में अल्पसंख्यक तुष्टीकरण के विरुद्ध जनमत प्रबल हो रहा है और आतंकवाद के विरुद्ध भी। मा.सू.सं.6410.

विपिन तिवारी: कल के रात्रिकालीन चर्चा में मुस्लिम तुष्टिकरण के विषय पर चर्चा की गई। चर्चा में शामिल अधिकतर लोगों का मानना है कि स्वतंत्रता के बाद से ही कांग्रेस ने तुष्टिकरण की राजनीति को अपना प्रमुख एजेंडा बना लिया। पंडित नेहरू की नीतियों ने इस प्रक्रिया को और मजबूत किया, जिससे देश में बहुसंख्यक समाज, विशेष रूप से हिंदू, द्वितीय श्रेणी के नागरिक की तरह व्यवहार किए जाने लगे। नेहरू ने धर्मनिरपेक्षता के नाम पर अल्पसंख्यकों को विशेष सुविधाएँ और अधिकार दिए, लेकिन यह असल में वोट बैंक की राजनीति का एक तरीका था। नेहरूवादी नीतियों के तहत हिंदू समाज के अधिकारों को सीमित किया गया, जबकि मुस्लिम समुदाय को विशेष दर्जा देकर कई प्रावधान लागू किए गए।

कांग्रेस की सरकारों ने इस नीति को आगे बढ़ाते हुए मुस्लिम तुष्टिकरण को संस्थागत रूप दे दिया। शाह बानो प्रकरण इसका प्रमुख उदाहरण था, जब राजीव गांधी सरकार ने सुप्रीम कोर्ट के फैसले को पलटकर मुस्लिम पर्सनल लॉ को बरकरार रखा। इसी तरह, वक्फ बोर्डों को अत्यधिक अधिकार देकर उन्हें हिंदू धार्मिक संस्थाओं की तुलना में कहीं अधिक संपत्ति और सुविधाएँ दी गईं। इस तुष्टिकरण ने समाज में गहरी खाई पैदा की और बहुसंख्यकों में असंतोष को जन्म दिया।

आज देश में जनमत तेजी से बदल रहा है। लोग कांग्रेस की इस तुष्टिकरण नीति के विरुद्ध खड़े हो रहे हैं और समान नागरिक संहिता की मांग कर रहे हैं। धारा 370 हटाना और तीन तलाक खत्म करना यह दर्शाता है कि भारत अब तुष्टिकरण की राजनीति से ऊपर उठकर न्याय और समानता की दिशा में बढ़ रहा है। आतंकवाद और कट्टरपंथ के विरुद्ध कड़े कदम उठाए जा रहे हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि देश अब सशक्त और निष्पक्ष शासन व्यवस्था की ओर अग्रसर है।

19/03/2025 मंथन क्रमांक 356: किसी अधिकार प्राप्त व्यक्ति द्वारा अधिकारों का दुरूपयोग, अधिकारदाता के प्रति अपराध है। ऐसे अधिकार सम्पन्न व्यक्ति को घूस देकर उन अधिकारों का लाभ उठाना कोई अपराध नहीं है। मा.सू.सं.2406

विपिन तिवारी: जब कोई अधिकार प्राप्त व्यक्ति अपने पद और शक्ति का दुरुपयोग करता है, तो यह न केवल उसकी नैतिकता पर प्रश्नचिह्न लगाता है, बल्कि उस प्रणाली के प्रति भी विश्वासघात है जिसने उसे वह अधिकार सौंपा। यह दुरुपयोग अब चाहे भ्रष्टाचार के रूप में हो, पक्षपात के रूप में हो या जनहित को दरकिनार करने के रूप में, यह एक अपराध है जो समाज की जड़ों को कमजोर करता है। अधिकारदाता, जो जनता या कोई संस्था हो सकती है, अपने प्रतिनिधि से निष्ठा और ईमानदारी की अपेक्षा करता है, और जब यह अपेक्षा टूटती है, तो यह विश्वास का अपमान है।

अधिकार प्राप्त व्यक्तियों के पास शक्ति और जिम्मेदारी का अनूठा संगम होता है, और कई बार यह शक्ति समाज के हित से अधिक व्यक्तिगत लाभ के लिए उपयोग की जाती है। यदि कोई व्यक्ति अपने अधिकारों का दुरुपयोग कर रहा है, तो यह उसके और अधिकारदाता के बीच का मामला है। ऐसे में, यदि कोई तीसरा पक्ष उस व्यक्ति को घूस देकर अपने लाभ के लिए उन अधिकारों का उपयोग करता है, तो इसे अपराध की श्रेणी में रखना तर्कसंगत नहीं लगता। घूस देना एक व्यावहारिक कदम हो सकता है, जो उस मौजूदा व्यवस्था का हिस्सा बन जाता है जहां अधिकार पहले से ही दुरुपयोग के मार्ग पर हैं। यह एक ऐसी स्थिति है जहां नैतिकता से अधिक वास्तविकता हावी होती है। समाज में जब नियमों को पहले ही तोड़ा जा चुका हो, तो उसका लाभ उठाना केवल बाजार की मांग और आपूर्ति का सिद्धांत है। अधिकार संपन्न व्यक्ति पहले ही अपनी विश्वसनीयता खो चुका होता है, और घूस देने वाला केवल उसका उपयोग करता है, न कि उस दुरुपयोग को जन्म देता है। कानून और नैतिकता के दायरे में यह गलत हो सकता है, पर यह अपराध की परिभाषा को पूरी तरह से संतुष्ट नहीं करता। यह एक अनुबंध है, जहां दोनों पक्ष अपनी सहमति से लाभ उठाते हैं।

राजनैतिक चर्चा

राजनीति पूरी तरह उथल-पुथल का खेल है। कब कौन आसमान में चढ़ जाएगा और कब पाताल तक गिर जाएगा, इसका अनुमान लगाना बहुत कठिन है। अभी वर्ष पर पहले ही 4 जून को भारत के देशभक्तों के सामने एक चिंता दिखने लग गई थी कि अब मोदी का क्या होगा, अब हिंदुत्व का क्या होगा, अब देश किधर जाएगा। उस समय राहुल गांधी, अरविंद केजरीवाल, अखिलेश यादव, लालू यादव सब इस प्रकार ताल ठोक रहे थे जैसे कि बस कुछ ही महीनों में वह पूरी राजनीति को पलट कर रख देंगे। लेकिन सात-आठ महीने में ही ऐसा लगता है कि सारा अंधेरा छंट गया है। अब न हिंदुत्व पर कोई खतरा दिख रहा है, न मोदी पर कोई खतरा दिख रहा है, न देश पर कोई खतरा दिख रहा है। जो अरविंद केजरीवाल मोदी की डिग्री के बारे में दिन-रात चिल्लाते रहते थे, यहां तक कि अरविंद ने यह भी कह दिया था कि भारत को एक पढ़े-लिखे प्रधानमंत्री की जरूरत है, अनपढ़ की नहीं, वह अरविंद केजरीवाल आज अब विपश्यना कर रहे हैं। अब वह इस बात पर गंभीर चिंतन कर रहे हैं कि उनका भविष्य क्या होगा। जो अखिलेश यादव उछल-उछलकर के कुंभ की आलोचना कर रहे थे, वही अखिलेश यादव संभल के परिणामों को देखकर इस बात की सोच में पड़ गए हैं कि अब उनका राजनीतिक भविष्य क्या होगा। जो राहुल गांधी अमेरिका में जाकर प्रधानमंत्री बनने का सपना देख रहे थे, बड़ी-बड़ी बातें कर रहे थे, वहीं राहुल गांधी अब न ईवीएम के बारे में बोल रहे हैं, न ही वह अडानी-अंबानी के बारे में बोल रहे हैं, न ही उछल-उछलकर कोई बड़ी-बड़ी घोषणाएं कर रहे हैं। सबके सामने एक चिंता की लकीर खींच गई है कि जिस साम्यवाद और इस्लाम के सहारे ये सब उछल रहे थे, वही अब खतरे में आ गए हैं। साम्यवाद, इस्लाम और इन दोनों के पिछलग्गू विपक्षी दलों का भविष्य क्या होगा। मैं कोई भी भविष्यवाणी नहीं कर रहा, क्योंकि राजनीतिक भविष्य की घोषणा करना हमेशा खतरनाक होता है, लेकिन इतना जरूर फिर से दिखने लगा है कि भारत में राष्ट्रवाद को खतरा नहीं है, हिंदुत्व को खतरा नहीं है, हिंदुत्व और राष्ट्रवाद को चुनौती देने वालों पर खतरा है।

विपक्ष के चार नेता अलग-अलग बैठकर चिंतन कर रहे हैं। इन चार में से तीन तो बिल्कुल स्पष्टवादी हैं, ये किसी तरह की नाटकबाजी नहीं करते। इन तीन में हैं अखिलेश यादव, राहुल गांधी और उद्धव ठाकरे। अरविंद केजरीवाल घुमा-फिरा कर बात किया करते हैं। अरविंद केजरीवाल कभी कोई बात साफ नहीं बोलते, लेकिन चिंता में चारों ही हैं और चारों अलग-अलग चिंता कर रहे हैं। अखिलेश यादव संभल और कुंभ से बहुत चिंतित हैं, उद्धव ठाकरे महाराष्ट्र में हिंदुत्व के उभार से चिंतित हैं, लेकिन राहुल गांधी की चिंता इन तीनों से अलग है। राहुल गांधी पूरी तरह अंग्रेजी भाषा के पक्षधर हैं, इस्लाम के समर्थक हैं, साम्यवादी विचारधारा के साथ जुड़कर नीतियां बनाते हैं, लेकिन साम्यवाद और इस्लाम की कमजोरी ने राहुल गांधी को चिंतित कर दिया है। भाषा के मामले में भी राहुल गांधी अपने को फंसा हुआ महसूस कर रहे हैं। तमिलनाडु सरकार ने खुलकर हिंदी का विरोध शुरू कर दिया है। तमिलनाडु त्रिभाषा फार्मूले को भी नहीं मान रहा है, जबकि त्रिभाषा फार्मूला मोदी के पहले भी था और मोदी के बाद भी है। कांग्रेस के शासन में भी त्रिभाषा फार्मूला था, जिसका करुणा निधि विरोध करते थे, और अब जो नया त्रिभाषा फार्मूला है, उसका भी स्टालिन खुलकर विरोध कर रहे हैं, क्योंकि भाषा के नाम पर स्टालिन अपने राजनीतिक सत्ता को बनाए रखना चाहते हैं। राहुल गांधी ऐसे समय में खतरा देख रहे हैं कि कहीं उत्तर भारत पूरा का पूरा हाथ से न निकल जाए। राहुल तमिलनाडु के साथ-साथ उत्तर भारत को भी अपने साथ जोड़कर रखना चाहते हैं, जो स्टालिन की समस्या नहीं है। इसलिए राहुल गांधी वर्तमान समय में बहुत परेशान हैं। न वह हिंदी का विरोध कर रहे हैं, न हिंदी का समर्थन कर पा रहे हैं। क्या करें, इसका कोई फार्मूला समझ में नहीं आ रहा है।

साथियों की कलम से

वर्चस्व की चाह में बिगड़े संतुलन का परिणाम वर्तमान संवैधानिक संकट: ज्ञानेन्द्र आर्य

भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था आज उस कुकर्म का परिणाम भोग रही है, जिसमें राष्ट्रपति को सत्ताधारी दल की कठपुतली बनाया गया। यद्यपि राष्ट्रपति का चयन सत्ताधारी दल के समर्थन से ही होता है, फिर भी उसकी नियति उसकी नीयत को परिभाषित करती थी। यह सर्वोच्च पद मंत्रिमंडल, सशक्त मंत्री परिषद, और तीनों सेनाओं का नेतृत्व करने की नियति ही है, जो इसकी नीयत को एक मजबूत आधार प्रदान करती थी।

किंतु, लोकतांत्रिक मूल्यों के विपरीत मनमाने ढंग से विधायी शक्तियों का दुर्पोयोग कर भारतीय गणतंत्र में लोकतांत्रिक मूल्यों को लगभग समाप्त कर दिया गया। 24वें और 42वें संविधान संशोधनों ने तानाशाही की दिशा में कदम बढ़ाए, जिसने शक्ति का केंद्रीकरण प्रधानमंत्री, अर्थात् विधायिका और कार्यपालिका के सर्वोच्च पद, में कर दिया। 44वां संविधान संशोधन, जो 42वें संशोधन के असंतुलन को सुधारने का दावा करता था, केवल खानापूर्ति तक सीमित रहा।

विवेक और शक्ति किसी भी दायित्व के निर्वहन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारत, जो विविधताओं का देश है, जहां हर कदम पर परिस्थितियां बदलती हैं, इतनी विशाल और जागृत विवेक वाली सभ्यता को केवल कानून के बल पर नियंत्रित करने की कोशिश ने गंभीर असंतुलन पैदा किया। यह असंतुलन वर्तमान युग की कई समस्याओं का मूल कारण है।

सत्ताधीशों ने अपनी सुविधानुसार योजनाओं को लागू करने की जल्दबाजी में व्यवस्था में विवेक के महत्व को समाप्त कर दिया, जिससे तानाशाही की प्रवृत्ति को न केवल सत्ता में, बल्कि जनता और व्यवस्था के हर अंग में स्थापित कर दिया गया। आज भारतीय संवैधानिक व्यवस्था में टूटे हुए न्यायिक मूल्य, भ्रष्टाचार, अराजकता, और अनैतिकता इसी विवेकहीन और असीम शक्तिशाली व्यवस्था का परिणाम हैं।

समान नागरिक संहिता- एक विमर्श (2)

- नरेन्द्र सिंह

भारत में सत्ता के पक्ष-विपक्ष में कोई भी राजनीतिक संगठन हो, किंतु सत्ता संघर्ष इतने नीच स्तर तक पहुँच गया है कि यहाँ समाज हित के अति आवश्यक विषयों पर होने वाले काम भी राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता में उलझ जाते हैं। अलबत्ता लक्ष्य कोई भी हो, लेकिन इस समय देश की सरकार समान नागरिक संहिता के बनाने की पुरजोर कोशिश कर रही है और सरकार का विपक्ष इसका विरोध करने के लिए लालायित तो है, लेकिन यह गांधी का सपना था, तो वह न तो इस मुद्दे को निगल पा रहा है और न उलट पा रहा है। विपक्ष ने थक-हार कर मुस्लिम वर्ग को इस सर्व-समावेशी व्यवस्था के अनावश्यक विरोध का झंडाबरदार बनाया है। सत्ता के प्रतिद्वंद्विता में किसी भी राजनेता के लिए ऐसे विषय का विरोध करना अवश्य हो जाता है, जिसका लाभ उसका विपक्षी उठाना चाहता है, भले ही वह विषय समाज के लिए हितकारी हो! राजनेताओं के लिए ऐसी दशा धर्म संकट के समान होती है। इस दशा को झेलने वाला नेता या राजनीतिक संगठन अक्सर इसका विरोध अपने सबसे मूर्ख मोहरे से ही करवाता है। भारत के सामाजिक तथा राजनीतिक पटल का इस्लामीकरण करने को लालायित भारतीय मुसलमानों की स्थिति आज ऐसे मोहरे की ही है। धार्मिक तथा जातीय सरकार (देश) मानव सभ्यता के माथे का कलंक हैं। दुनिया से इनका हर हाल में उन्मूलन होना ही चाहिए। इस परिप्रेक्ष्य में यदि इस्लाम को देखें, तो दुनिया की अन्य सभी सभ्यताओं में कम या ज्यादा यह लचीलापन मिलता है कि उसकी परंपरागत मान्यताओं को उसका कोई भी अनुयायी यथावत माने या न माने! लेकिन इस्लाम की मान्यताएं अपने अनुयायियों को इसकी यथार्थपरक समीक्षा का कोई अधिकार नहीं देती हैं। यह स्थिति तब तक भी उचित कही जा सकती है जब तक इस्लाम की निजी व्यवस्था समाज के ढांचे को प्रभावित नहीं करती है, लेकिन यह अक्सर समाज के विरुद्ध अपनी व्यवस्था को सर्वोपरि मानने लगता है, तब समाज के सामने वर्ग संघर्ष का संकट खड़ा हो जाता है। आधुनिक समाज की दशा के अनुसार भूमंडलीकरण इसकी आवश्यकता है और इसके लिए यथार्थपरक तथा समन्वयक व्यवस्था का निर्माण आवश्यक है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए न केवल भारत में, बल्कि विश्व भर में एक उपयुक्त समान व्यक्ति संहिता का निर्माण अत्यंत आवश्यक है।

भारत में कानूनों के बनने के समय राजनीतिक विरोधाभाष मर्यादा तोड़ देता है। इस दशा में जनता भ्रम का शिकार हो जाती है कि ऐसी कोई व्यवस्था बननी भी चाहिए अथवा नहीं! जबकि सरकार तथा विपक्ष का यह उत्तरदायित्व है कि वह व्यवस्था बनने वाले विषय के महत्व को आम जनता के सामने स्पष्ट करने के यथा संभव उपाय करे, किंतु ऐसा कुछ भी नहीं होता है! भारत में समान नागरिक संहिता बनने का विषय न केवल स्वतंत्रता मिलने के समय से ही चर्चा में है, बल्कि संविधान निर्माताओं ने अनुच्छेद-44 में इसके निर्माण की आवश्यकता भी स्पष्ट की है। लेकिन आश्चर्य यह है कि व्यवस्था के रूप में जो विषय जनता की अनेक समस्याओं को हल कर सकता है, उसे धर्म तथा राजनीति के ठेकेदारों ने वर्ग संघर्ष का कारण बना दिया है। यह भारत देश की विडंबना है कि यह विषय वर्ग संघर्ष के आधार पर चर्चा में तो आता रहा है, लेकिन कभी जन-विमर्श का विषय नहीं बन सका है! यदि ऐसा होता, तो जनता स्वयं देश में एक उपयुक्त समान नागरिक संहिता के निर्माण का अलख जगाने निकल पड़ती और यह व्यवस्था बनने पर यह न केवल वर्ग-संघर्ष के उत्पात से बचती, बल्कि सत्ता तथा अर्थ का दुरुपयोग करने वाले अनेक नेताओं, धर्म-गुरुओं एवं पूंजीपतियों की गलत नीतियों का शिकार होने से भी बच जाती। सामान्यतया विचार करें, तो तत्काल में समान नागरिक संहिता बनने से समाज इन बुराइयों से मुक्त हो जाएगा-

1- धार्मिक श्रेष्ठता और धार्मिक संगठनवाद का उन्मूलन।
2- जातीय श्रेष्ठता और जातीय संगठनवाद का उन्मूलन।
3- आरक्षण का उन्मूलन। (सामाजिक एवं राजनीतिक दोनों)।
4- लिंग भेद के आधार पर पनपी श्रेष्ठता का पतन।
5- ऊँच-नीच, छोटे-बड़े के भेद-भाव का पतन।
6- क्षेत्रवाद तथा भाषावाद का उन्मूलन।

अर्थात समान नागरिक संहिता का यह अर्थ होता है कि इन विषयों के आधार पर किसी भी व्यक्ति को कोई विशेषाधिकार नहीं होता है। यद्यपि भारत की मौजूदा व्यवस्था के पैरोकार यही कहेंगे कि भारत का संविधान आरक्षण को छोड़कर समाज की इन सभी समस्याओं के उन्मूलन का मार्ग प्रशस्त करता है। वस्तुतः यह सच नहीं है। क्योंकि संवैधानिक व्यवस्था द्वारा समाज की रूढ़ अथवा परंपरागत व्यवस्थाओं को संरक्षित करके व्यवस्था को यथार्थ के अनुकूल नहीं बनाया जा सकता! ऐसा होना ही असंभव है। मैंने जब व्यवस्था निर्माण के उद्देश्य को समझने का प्रयास किया, तो जाना कि हमारा संविधान समाज के लिए ऐसी आश्चर्यजनक आदर्श व्यवस्था का नैरेटिव प्रस्तुत करता है, जो एक ओर रूढ़ परंपराओं को जीवित रखने की व्यवस्था बनाता है, तो दूसरी ओर आधुनिक कसौटी का समाज बनाने की भी घोषणा करता है। सच यह है कि भारत के संविधान निर्माताओं ने परंपरा तथा आधुनिकता का समन्वय करने के प्रयास में समाज के प्राकृतिक स्वरूप को ठुकरा दिया तथा वर्गों को समाज निर्माण का आधार मान लिया। क्या समाज में धर्म, जाति, क्षेत्र, भाषा जैसे विषयों को विधिक मान्यता मिलने पर वर्ग समन्वय संभव है? वस्तुतः मेरे विचार से परंपरा तथा यथार्थ का समन्वय तब तक बेहद कठिन कार्य है, जब तक समाज में ऐसे अनेक व्यक्ति समूह हैं, जो अपनी जातीय जीवन पद्धति को मौलिक भी मानते हैं तथा समाज से ज्यादा महत्वपूर्ण भी। ऐसे लोगों की यह मान्यता उन्हें यथार्थ से समन्वय नहीं करने देती है। लेकिन इस दशा में इस मौलिक तथ्य पर विचार करना भी आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीवन पद्धति निर्धारित करने की स्वतंत्रता होनी ही

चाहिए। किसी के भी रहन-सहन में किसी व्यवस्था या व्यक्ति को हस्तक्षेप करने का अधिकार कैसे हो सकता है? लेकिन सच तो यह भी है कि जब व्यक्ति की जीवन पद्धति समाज के आकार-प्रकार से टकराती है या इससे समन्वय नहीं करती है, तो सार्वजनिक व्यवस्थाओं का निर्वहन नहीं हो पाता है और परिणाम स्वरूप समाज अस्थिर हो जाता है। इस किंकर्तव्यविमूढ़ स्थिति का समाधान यह है कि समाज मूलतः सहजीवन का प्रासाद है। यदि कोई व्यक्ति समाज में सहजीवन के सिद्धांत को स्वीकार न करे, तो उसे समाज से कुछ भी प्राप्त करने का अधिकार नहीं हो सकता है! वस्तुतः परस्पर आदान-प्रदान जीवन संचरण के लिए आवश्यक है और व्यवस्था संतुलन बनाने के लिए। यह ठीक है कि व्यक्ति को असीम स्वतंत्रता का मौलिक अधिकार है, लेकिन उसकी अपनी मौलिक आवश्यकताएं ही उसे समाज के अनेक बंधनों में बांधती हैं और यही मौलिक आवश्यकता व्यक्ति की असीम स्वतंत्रता का समाज में समावेश करने का मार्ग प्रशस्त करती है। इस उलझाव का समाधान तो यही हो सकता है कि धर्म, व्यक्ति का निजी विषय है, इस विषय के राजकीय संरक्षण तथा विरोध की कोई व्यवस्था नहीं हो सकती है। किसी व्यक्ति की जाति को भी कोई विधिक संरक्षण नहीं होना चाहिए। इस विमर्श में इस तथ्य पर विचार करना भी आवश्यक है कि न तो पुरानी सभी व्यवस्थाएं खराब हो सकती हैं और न सर्वकालिक रूप से उपयुक्त। वस्तुतः यह सब काल-प्रवाह के अनुसार बदलने वाले समाज के आकार-प्रकार पर निर्भर करता है कि व्यवस्था का स्वरूप कैसा हो? आधुनिक युग में अंतरधार्मिक तथा अंतर्जातीय टकराव समाज के अस्तित्व के लिए बेहद खतरनाक हो गए हैं। इस दशा में यह कहना ठीक रहेगा कि समाज सभ्यता को यथार्थ की कसौटी के आधार पर पुनः परिभाषित करे तथा उसके अनुसार समाज व्यवस्था की एक आधुनिक संहिता बनाए।

भारत के संविधान में कानून बनाने के लिए सामाजिक नियोजन के विषयों को समवर्ती सूची में रखा गया है। समान नागरिक संहिता भी सामाजिक नियोजन का ही विषय है। संविधान के अनुसार इस विषय पर केंद्र तथा राज्य दोनों स्तर पर कानून बनाया जा सकता है। हां, यह संवैधानिक व्यवस्था है कि किसी विषय पर व्यवस्था बनने पर यदि दोनों के बीच कोई टकराव होता है, तो संसद द्वारा निर्मित व्यवस्था को ही प्रभावी माना जाएगा। लेकिन समान नागरिक संहिता बनने के विषय में मैं इस संवैधानिक व्यवस्था को ठीक नहीं मानता हूँ। क्योंकि समान नागरिक संहिता का अर्थ भारत के सभी व्यक्तियों के लिए एक जैसा कानून बनाना है और अलग-अलग राज्यों के विधान मंडल कोई राष्ट्रीय स्तर की समन्वयक व्यवस्था बनाने के लिए उपयुक्त निकाय नहीं हैं। यह कार्य देश की संसद को ही करना चाहिए। ....

(इस लेख पर मित्रों के कुछ प्रश्न होंगे, तो यह विषय ज्यादा स्पष्ट हो सकेगा।)

क्रमशः *(पिछले अंक में अपने पढ़ा कि विवेक और उसके साथियों से प्रो.श्रीवास्तव विभिन्न सामाजिक विषयों पर चर्चा करते हुए धर्म के आस्था श्रद्धा का समाज और व्यवस्था पर प्रभाव पर चर्चा कर रहे थे अब आगे)*

~ जीवन पथ ~

सामाजिक व्यवहार में संगठन शब्द का अर्थ, "किसी दशा में यथार्थ की अपेक्षानुसार एकत्रित व्यक्ति समूह" भी कहा जा सकता है। संगठन का महत्व अपने निर्माण के उद्देश्य को प्राप्त करके समाज में विलीन हो जाने में निहित होता है अन्यथा यह शक्ति केन्द्रीयकरण का कारण बन जाता है। ब्रह्माण्ड का प्रत्येक मानवतावादी विचार समाज का सम्यक एकत्रीकरण चाहता है और सामाजिक संगठन बनते भी इस प्रकार है कि समाज में जब कहीं घटनावश कोई परिस्थिति सन्तुलित नहीं होती है, कोई प्राकृतिक या अप्राकृतिक कारण समाज को हांनि पहुँचाता है तो लोग स्वाभाविक तौर पर एकत्रित होने लगते हैं। यह जनशक्ति कई बार किसी संगठन के रूप में प्रवृत्त हो जाती है। मेरे विचार से ऐसा करके वे लोग राज्य के व्यवस्थापकों के मार्फत या कई बार स्वयं द्वारा राज्य से भी अपने शोषण का न्याय करते है। क्या ऐसे किसी परिस्थितिजन्य संगठन की उत्पत्ति का कोई अन्य कारण एवं लक्ष्य भी हो सकता है? .....समाज इस भ्रम में फंसकर ऐसे संगठन को और शक्तिशाली बनाता है। लेकिन किसी भी संगठन के नियामक और उसके संचालनकर्ता क्या उस संगठन की शक्ति के माध्यम से समाज को न्याय दिला पाते हैं? आप अध्ययन करेगें तो पाएंगे कि किसी अतिविशिष्ट या अपवाद स्वरूप स्थिति को छोड़कर कोई भी तथाकथित सामाजिक संगठन अपने निर्माण के उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर पाता है। बल्कि जल्द ही वे भ्रष्टाचार एवं कई अन्य प्रकार की अनियमित्ताओं का शिकार हो जाते हैं। आप निरीक्षण करेगें तो पाएंगे कि समाज में सदैव से ही ऐसा होता आया है। क्या हम कभी संगठनवाद के इस दोष को जानना चाहते हैं कि ऐसा क्यों होता है? क्योंकि शक्ति संचित करना संगठन का आधारभूत लक्षण होता है। समाज में किसी भी परिस्थिति एवं प्रारूप में केन्द्रित होने वाली शक्ति जब भी निरंकुशता के भाव से ग्रस्त हो जाती है तो समाज में न्याय के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो जाता है। विभिन्न संगठनों के रूप में केन्द्रित शक्ति परस्पर रूप से केवल शोषण की प्रवृत्ति को बढावा देती है जिससे समाज में गुटबाजी का विकास होता है। क्या ऐसे संगठनवाद के विकास का समाज के लिए कोई औचित्य हो सकता है? किसी एक व्यक्ति को नहीं बल्कि सार्वजनिक रूप से लोगों को इस तथ्य पर चिन्तन करना चाहिए। हमे सोचना चाहिए कि दुनिया भर में समाज में तमाम धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं अन्य किसी भी अवधारणा के आधार पर निर्मित हुए संगठन केवल समाज में गुटबाजी का विकास करते हैं। क्योंकि वे ऐसा करके अपनी सत्ताखोरी की प्यास को शांत कर पाते हैं। सर्वविदित तथ्य है संगठन विचारों की कब्र होता है। वह परिस्थिति-विशेष में ही मानवता के प्रति उत्तरदायी हो सकता है, सदैव के लिए नहीं और यदि वह ऐसा करेगा तो उसका अस्तित्व स्वतः ही समाप्त हो जाएगा। मूलतः समाज के ढाँचे में समाज के अतिरिक्त किसी भी संगठन की उत्पत्ति और उसका विस्तार स्वतन्त्र विचार मन्थन की प्रक्रिया का पतन किए बिना विकास नहीं कर सकता है।

अन्तरजातीय, अन्तरधार्मिक तथा अन्य प्रकार के व्यापक महत्व के दृष्टिकोण के आधार पर बनने वाले संगठन भी उस समय महत्वहीन सिद्ध हो जाते हैं जब वे स्वयं को सर्वव्यापक समाज के प्रति उत्तरदायी सिद्ध न करके स्वयं के प्रति उत्तरदायी सिद्ध करते हैं। इस बारे में मैं पुनः यही कहुँगा कि कोई भी संगठन अपने ढाँचे में नए विचारों के अन्वेषण और उनकी स्वीकृति का मार्ग बन्द कर देता है। क्योंकि वह जिस दृष्टिकोण पर आधारित होता है उसी के आधार पर अपनी दिशा तय करता है, उसमें तर्क के अन्वेषण पर प्रतिबन्ध होता है। मैं तो केवल इस धरातलीय दृष्टिकोण को आधार मानकर समाज में संगठन की उत्पत्ति एवं उनके प्रभाव को नकारता हूँ और इस सिद्धान्त का पालन करने के लिए सदैव तत्पर रहता हूँ कि समाज अपनी उत्पत्ति के कारणों को समझते हुए प्राकृतिक आधार पर संगठित रहे, लेकिन इसके आन्तरिक ढाँचे में समाज द्वारा स्थापित व्यवस्था की आवश्यकता की पूर्ति के अतिरिक्त कैसे भी संगठनों का निर्माण नहीं होना चाहिए। ऐसा होने पर ही समाज अपने मूल स्वरूप को जीवित रख सकता है।

क्या ऐसा होने से समाज के शोषित वर्गों को न्याय मिल सकेगा? वह पुनः प्रश्न करता है।

समाज में न्याय व सुरक्षा की स्थापना करना राज्य का दायित्व होता है।

और यदि राज्य अपनी जिम्मेदारी को नकारे तो!

तो समाज को क्रान्ति का अधिकार सिद्ध हो जाता है।

लेकिन ऐसा करने के लिए भी तो कोई न कोई संगठन बनेगा ही!

इसी कार्य के लिए तो समाज को प्राकृतिक रूप से संगठित होना चाहिए। विपत्ती काल में समाज को समाज विरोधी तत्वों का दमन करके अपना सार्वभौमिक अस्तित्व सिद्ध करना चाहिए। यही सामाजिक संगठन का अभिप्राय है।

क्या तुम्हारे विचार में धर्म और संगठन का कोई सम्बन्ध होता है?

बिल्कुल नहीं! यह पहले ही स्पष्ट हो चुका है कि न तो धर्म किसी को अपना अनुयाई बनाता है और न धर्म व संगठन का किसी भी प्रकार का कोई सम्बन्ध होता है।

तो फिर लोग धर्म के नाम पर संगठित क्यों हो जाते हैं?

यह मनुष्य कृत विकार है जिसे धर्म के स्वयंभू अधिष्ठाताओं ने समाज में धर्म की गलत परिभाषा स्थापित करके पैदा किया है।

विवेक! तुम्हारे अनुसार धर्म और संगठन का कोई मूल सम्बन्ध नहीं है। तुमने यथार्थ में स्थापित धर्म के स्वरूप को वैश्विक समाज के आचरण के विपरीत परिभाषित किया है! क्या तुम इस विषय को भी स्पष्ट करोगे कि वैश्विक समाज में धर्म के चरित्र पर संगठन का प्रभाव किस प्रकार पड़ा? .....इस बार सिमी उससे प्रश्न करती है।

क्रमशः.......

GYAN YAGYA
ज्ञानयज्ञ परिवार
वैचारिक संतुलनवादी हिंदुत्व की प्रयोगशाला

ज्ञानयज्ञ परिवार

रामानुजगंज छ॰ग॰ 497220

प्रिय साथी,

आप लंबे समय से ज्ञान तत्व के विचारों से जुड़े रहे हैं और समय-समय पर बजरंग मुनि जी से भी चर्चा करते रहे हैं। मुनि जी ने अकेले कार्य करने की सीमाओं के कारण अब एक संस्थागत स्वरूप देने का निर्णय लिया है। दिनांक 29, 30 और 31 मार्च 2025 के स्वराज का पुनर्जागरण नोएडा कार्यक्रम में देश भर के कुछ समर्पित साथियों के साथ हुई बैठक में यह घोषणा की गई। मुनि जी ने उम्र और स्वास्थ्य के कारण स्वयं को इस संस्था की सक्रिय भूमिका से अलग कर लिया है, किंतु उनका अप्रत्यक्ष समर्थन और मार्गदर्शन हमें मिलता रहेगा।

बैठक में तीन प्रमुख विषयों पर कार्य करने का निर्णय लिया गया:

1. **संवैधानिक व्यवस्था परिवर्तन**: संविधान संशोधन में ग्राम सभाओं की महत्वपूर्ण भूमिका सुनिश्चित करना और उन्हें संविधान में वर्णित 29 विधाई अधिकार स्वतंत्र रूप से उपयोग करने की स्वायत्तता दिलाने के लिए जन जागरण करना।

2. **सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन**: परिवार व्यवस्था को मजबूत करना और वर्ग संघर्ष को वर्ग समन्वय में बदलने के लिए जन जागरण करना।

3. **वैचारिक व्यवस्था परिवर्तन**: भारतीय वैचारिक धरातल को मजबूत करना, ताकि हम विदेशी विचारों की अंधानुकरण से बच सकें।

इन विषयों पर आगे की योजना बनाने के लिए हम आप जैसे समर्पित साथियों के साथ प्रत्यक्ष संवाद करना चाहते हैं। यदि आप अपने क्षेत्र में छोटी या बड़ी बैठक आयोजित करने के लिए सहमत हैं, तो कृपया अपनी स्वीकृति और पता लिखकर हमें भेजें। यदि आप बैठक आयोजित नहीं कर सकते, तब भी अपनी स्थिति पोस्टकार्ड अथवा whatsapp पर लिखकर अवश्य सूचित करें।

आप सीधे मुझसे (नीचे दिये मोबाइल नंबर पर) अथवा नरेन्द्र जी से 90124 32074 पर भी संपर्क कर सकते हैं।

आपके सहयोग की अपेक्षा में,

ज्ञानेन्द्र आर्य कार्यालय प्रभारी
ज्ञानयज्ञ परिवार रामानुजगंज
9452705030;8318621282

ज्ञान तत्व पाक्षिक पत्रिका
gyanyagyaP@gmail.com
www.Mardarshak.info
8318621282